पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) का रवैया अपने दुश्मनों के साथ

श्री नाथू राम

विषय-सूची

लेखक का परिचय

लेखक एक हिन्दू चिन्तक तथा विचारक हैं, पंजाब के निवासी हैं इनको ज्ञान तथा कला में विशेष रुचि है। अपने जीवन का एक भाग मध्यपूर्व के इस्लामी संस्कृति के गढ़ में बिताने के कारण इनको उसे निकट से देखने-समझने का अवसर मिला है, इसी लिए इस्लाम की विशेष जानकारी रखनेवालों में इनकी गणना होती है। इनकी एक और पुस्तक "इस्लाम और औरत" भी है, जो अति लोकप्रिय है।

पुस्तक लेख "दयामूर्ति का रवैया अपने शत्रुओं के साथ" के शीर्षक से पहले लेखमाला के रूप में 'फ़ारान' उर्दू मासिक, कराची में प्रकाशित हुआ था। उन्हीं लेखों के इस संग्रह को बाद में पुस्तक रूप दिया गया, जिसका अनुवाद इस समय आपके हाथों में है।

धर्मप्रधान व्यक्तियों तथा जातियों का एक-दूसरे से भ्रातृत्व सम्बन्ध होना अत्यावश्यक है, मुख्य रूप से देश-हित में तो ऐसा होना अनिवार्य समझा जाता है। धर्मों के बारे में पाई जानेवाली ग़लतफ़हमियों का निवारण तो होना ही चाहिए। ज़रूरत इस बात की भी है कि धर्मों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन-मनन किया जाए। यही भाव लेकर श्री नाथू राम ने यह लेख-माला प्रस्तुत की और इसी भाव के साथ हम इसे प्रकाशित करने में गर्व का अनुभव कर रहे हैं।

आशा है, इस प्रकार धर्मों का अध्ययन करने के लिए द्वार खुलेंगे और साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का सुगम वातावरण बनेगा।

—प्रकाशक

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा कृपाशील, अत्यन्त दयावान है।'

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) का रवैया अपने दुश्मनों के साथ

आज जब हम पैग़म्बरों की जीवनी तथा उनकी शिक्षाओं का अध्ययन करते हैं, तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि इन मेहरबान पैग़म्बरों का विरोध लोगों ने क्यों किया? सच्ची बातों पर आधारित उनकी शिक्षाओं को देशवासियों ने क्यों न स्वीकार कर लिया? हर एक पैग़म्बर का उनके अपने काल में विरोध किया गया, उनका उपहास किया गया, हर प्रकार के अत्याचार उनपर किए गए और उनमें अधिकांश को अपने ही लोगों के विरोध तथा अत्याचार के कारण देश-परित्याग पर विवश होना पड़ा और विदेश-प्रवास की ही स्थिति में वे अपने रचयिता तथा स्वामी से, प्राण-त्यागकर जा मिले। क़ुरआन इसी स्थिति का उल्लेख एक सामान्य नियम के रूप में इस प्रकार करता है—

> "कोई भी पैग़म्बर उनके पास ऐसा नहीं आया, जिसका उपहास न किया गया हो।" (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-11)

इसी सत्य की ओर वरक़ा-बिन-नोफ़ल ने संकेत किया था। वह्य के आरम्भ में हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) प्यारे पैग़म्बर (सल्ल॰) को वरक़ा के पास ले गईं, तो उन्होंने कहा, "यह क़ौम तुम्हें झुठलाएगी, तुमपर अत्याचार करेगी, देश से निकाल देगी और तुमसे लड़ाई करेगी।"

(इब्ने-हिशाम, भाग-1 पृ॰ 256)

और आगे वरक़ा-बिन-नोफ़ल कहते हैं कि काश उस समय मैं मौजूद होता जबकि तुम्हारी क़ौम तुमको वतन से निकाल बाहर करेगी।

यह सुनकर प्यारे पैग़म्बर (सल्ल॰) ने आश्चर्य से कहा, "क्या मेरी क़ौम मुझे अपने वतन से निकाल देगी?"

वरक़ा ने उत्तर दिया, "तुम जिस चीज़ (नुबुव्वत व पैग़म्बरी) को लेकर आए हो, उसे ले आनेवाला हर व्यक्ति अत्याचार का शिकार हुआ है।"

(हदीस : बुख़ारी)

ऐसा क्यों होता है?

हर युग की स्थिति एक जैसी नहीं होती, विभिन्न जातियों के रस्म व रिवाज में खुला अन्तर होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि उनका विरोध किए जाने के कारण भी अनेक रहे होंगे।

हर पैग़म्बर के विरोध के कारणों का पता लगाना आज हमारे लिए कठिन है। वैसे यह बात याद रखने की है कि पैग़म्बरों पर अत्याचार किए जाने के कारण भी अनेक हैं, लेकिन आपको विरोधियों के हालात का सही ज्ञान हो जाए तो विभिन्न पैग़म्बरों पर किए गए अत्याचारों के कारणों को समझने में कठिनाई न होगी, इसी लिए सबसे पहले हम पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के दुश्मनों के हालात और आप (सल्ल०) से उनके मामलों का सविस्तार अध्ययन करेंगे।

विरोध करनेवाले लोग

तीन वर्गों ने पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) का विरोध किया था—

1. मुशरिक (अनेकेश्वरवादी), 2. यहूदी, 3. मुनाफ़िक़ (कपटाचारी)। इन तीनों वर्गों के विरोध के कारण भिन्न-भिन्न थे और इनके तरीक़े भी अलग-अलग थे।

मुशरिक

अरब के मूल निवासी मुशरिक ही थे। यहूदी, ईसाई और अपनी अन्तर्रात्मा की पुकार पर 'सत्य-धर्म' के खोजी व्यक्तियों के अतिरिक्त तमाम अरबवासी अनीश्वरवादी कदापि न थे, बल्कि तौहीद (एकेश्वरवाद) की कल्पना उनके यहाँ थी। प्राचीन अरबों में 'अल्लाह' शब्द का प्रयोग इसी का प्रमाण है। अरब इस शब्द का प्रयोग वास्तविक रचयिता के मूल 'नाम' के रूप में ही करते थे, लेकिन इस विश्वास का उनके दैनिक जीवन पर कोई प्रभाव न था।

एकेश्वरवाद की कल्पना मन में होने के बाद भी वे मूर्तियों को पूजते थे, उन्हें अपना उपास्य तथा संरक्षक स्वीकारते थे। आश्चर्य तो इसपर है कि विशुद्ध 'अल्लाह' के नाम पर की जानेवाली इबादत भी किसी-न-किसी मूर्ति के माध्यम से अदा की जाती थी, जैसे हज़रत अब्दुल-मुत्तलिब ने मन्नत मानी थी कि वे अपने एक बेटे को अल्लाह के नाम पर बलि देंगे और जब बलि देने का समय आया तो अपने सबसे छोटे बेटे अब्दुल्लाह (मुहम्मद सल्ल॰ के पिता) को काबा के सबसे बड़े बुत हुबल के पास ले गए।

(इब्ने-हिशाम, भाग-1, पृ॰ 160-164)

जब उनसे पूछा गया कि तुम ऐसा क्यों करते हो? इन मूर्तियों के पास तुम्हारी रक्षा करने या तुमको सज़ा देने की कोई शक्ति नहीं है, तो उनका उत्तर इस प्रकार था—

"हम उनकी पूजा केवल अल्लाह तक पहुँचने के लिए करते हैं।"

इसी तरह तमाम मुशरिक अपनी मूर्ति-पूजा का यही कारण बताया करते थे और प्रायः आजतक यही कहा जा रहा है।

पैग़म्बर (सल्ल॰) पर उतरनेवाली पहली वह्य ही में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि अल्लाह एक है और वही सृष्टि का स्रष्टा है। इनसान अज्ञानी तथा बेआसरा है। वह्य मानव-ज्ञान का स्रोत है।

(क़ुरआन, सूरा-96 अलक़, आयतें-1-5)

लेकिन तीन वर्ष तक इस सच्चाई को खुलकर नहीं प्रसारित किया गया, बल्कि पूर्ण सावधानी के साथ, केवल विश्वास-पात्रों तक ही इसे सीमित रखा गया। आख़िर कब तक यह बात छिपाई जाती? तीन वर्ष बाद आदेश मिला कि प्रसारित करो, जो कुछ कहा जाता है और डराओ अपने निकटवर्तियों को। (क़ुरआन, सूरा-74 मद्दस्सिर, आयत-2) इसके बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने खुले आम अपना सन्देश प्रसारित करना आरम्भ किया।

(इब्ने-हिशाम, भाग-1, पृ॰ 280-281, तबरी भाग-3 पृ॰ 116)

इस्लाम की मौलिक शिक्षाएँ

इस आरम्भिक युग की शिक्षाओं को इस प्रकार संक्षेप में लिखा जा

सकता है—

1. वास्तविक उपास्य केवल अल्लाह की हस्ती है।

(क) अल्लाह एक है, हर एक का पैदा करनेवाला और पालनेवाला है। अल्लाह को नज़रअन्दाज़ करनेवाला इनसान ज़ालिम और बाग़ी है। वास्तव में इनसान को उसी की तरफ़ लौटना है ।

(ख) अगर अल्लाह का इनकार किया जाता है तो इनकारियों को सोचना चाहिए कि धरती तथा आकाश की रचना कैसे हुई? पहाड़ किस प्रकार जम गए? आकाश से वर्षा किस प्रकार होती है?

(ग) उनको खाना कहाँ से मिलता है? आसमान से वर्षा बरसानेवाला अल्लाह है। वही धरती से खाने की चीज़ें पैदा करता है। फिर ये मुशरिक अल्लाह की ना-शुक्री करके बुतों की पूजा क्यों करते हैं?

(घ) अल्लाह ने उन्हें पैदा किया, हरियाली उसने पैदा की, और तमाम काम उसके हुक्म से होते हैं। सत्कर्म करने और अल्लाह को सर्वोच्च मानकर उसकी भक्ति करनेवालों को ही सफलता मिलेगी।

(ङ) अल्लाह ने इनसान को आँखें दीं कि सत्य-असत्य को पहचान सके। क्या इनसान नहीं देखता है कि मूर्तियाँ न उसको फ़ायदा पहुँचा सकती हैं और न नुक़्सान पहुँचा सकती हैं? अगर ख़ुद को न मालूम हो तो दूसरे से पूछकर सच्चाई मालूम करने के लिए अल्लाह ने उसे जीभ दी है।

2. यतीमों तथा ज़रूरतमन्दों की सहायता करो

(क) अल्लाह उन लोगों की सहायता करता और उनपर अपनी कृपादृष्टि करता है, जो दान करते और अल्लाह से डरते हैं। इसके विपरीत कंजूसी करने और अल्लाह की नेमतों पर ना-शुक्री करनेवालों के जीवन को अल्लाह कठिन बना देता है और आख़िरत में उनका धन उनके काम न आ सकेगा।

(ख) दूसरों को आरोपित करने और धन एकत्र करने पर तुले हुए लोगों पर धिक्कार है। क्यों वे यह समझते हैं कि उनकी दौलत सदैव बनी रहेगी। वास्तव में वे तबाही की ओर बढ़ रहे हैं, जिससे उन्हें कोई न बचा सकेगा।

(ग) तुम यतीमों का सत्कार नहीं करते, निर्धनों को खाना नहीं देते, जो

कुछ मिलता है स्वयं खाकर मौज उड़ाते हो, धन एकत्र करते हो। आख़िरत के दिन ही तुम्हें समझ आएगी, जब जहन्नम तुम्हें निगलने के लिए मुँह खोले हुए होगी, लेकिन हाथ मलने के सिवा कुछ न मिलेगा।

(घ) अल्लाह का इनकार करने और ग़रीबों को खाना न खिलानेवालों का क़ियामत के दिन कोई सहायक़ न होगा। जहन्नम उनका ठिकाना होगी।

3. आख़िरत तथा पूछताछ का दिन सच है

(क) उन्हें बता दीजिए कि वे हमारी ओर (अल्लाह की ओर) लौटकर आएँगे और उन्हें अपने कर्मों का हिसाब देना होगा। काफ़िर (इनकार करनेवाले) उस दिन अत्यधिक कष्ट सहन करेंगे।

(ख) हमारे पास हाज़िर होनेवाले दिन उनके तमाम भेद खुल जाएँगे। उस दिन उनके उपास्य और उनका धन-वैभव उनके कुछ काम न आएगा।

(ग) आसमान चूरा-चूरा होनेवाले उस दिन सत्य के ये इनकारी क्या करेंगे?

(घ) आप (मुहम्मद सल्ल॰) की ज़िम्मेदारी मात्र उनको सचेत कर देना है और उन्हें उनके हाल पर छोड़ दीजिए, फिर उनका मामला हम ख़ुद देख लेंगे। मौत के बाद हमारे सामने हाज़िर होने पर सख़्त अज़ाब चखने के लिए उन्हें तैयार हो जाना चाहिए। सत्य के इन इनकारियों से वादा किया हुआ वह सख़्त अज़ाब का दिन निश्चित है वह आकर रहेगा।

यह है पैग़म्बर (सल्ल॰) के आरम्भिक युग की वह्य में प्रस्तुत शिक्षाएँ। इसमें मुख्य रूप से चार बातों पर ज़ोर दिया गया है–

1. बुतों की पूजा व्यर्थ कार्य है।

2. भक्ति व आज्ञापालन का अधिकारी तो केवल अल्लाह ही है।

3. धन एकत्र करने से बेहतर तो यह है कि उसे यतीम और ग़रीब के लिए ख़र्च किया जाए।

4. अल्लाह का इनकार करनेवालों का अन्जाम बहुत बुरा होगा।

क़ुरैश क्यों विरोध करते थे?

ये शिक्षाएँ मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी के समय में क़ुरैश की

विचार-धाराओं से पूरी तरह टकराती थीं। पैग़म्बर (सल्ल॰) के प्रति क़ुरैश के द्वेषपूर्ण विरोध का रहस्य भी यही है। इसके धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक कारण भी हैं।

1. धार्मिक कारण : एक ईश्वर की ओर बुलाने और बुतों का विरोध करने से स्पष्ट था कि उनके पुरखों का खंडन हो रहा था, यही सोचकर मक्का में मुशरिकों का क्रोध भड़क उठता और कोई तर्क न मिलता तो यही कहते कि हमारी मूर्तियों की भर्त्सना की जा रही है, हमें मूर्ख और नरक का ईंधन कहा जा रहा है और हमारे पुरखों तथा बुज़ुर्गों का बुरा चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है। ये थे मुशरिकों के आरोप।

अति व्यर्थ तथा निरर्थक बात को भी आसानी से न छोड़ना, यह मनुष्य का सहज स्वभाव है । एक काम यदि निरन्तर दस-बीस वर्ष से किया जा रहा हो, तो फिर कहना ही क्या! इसे मान्य तथ्य स्वीकार कर लिया जाता है। संसार के तमाम सिद्धान्त तथा क़ानून ग़लत सिद्ध हो सकते हैं, पर जीवन के इस 'मान्य-तथ्य' को ग़लत समझ लेना मनुष्य की समझ से परे है। इसमें किसी प्रकार के सन्देह को वह सहन करने के लिए तैयार नहीं।

स्वभावतः यही अरब में हुआ।

दस-बीस वर्ष नहीं, शताब्दियों से अरब बुतों की पूजा करते थे, इसलिए असम्भव न था कि इस नई आवाज़ से उन्हें कष्ट न हो। पर लगता है इस सम्बन्ध में उन्होंने गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी, अधिक-से-अधिक उन्होंने उपहास करने और नवीनता का मज़ाक़ उड़ाने का काम किया। (तबरी भाग-3, पृ॰ 1108)

निर्धन तथा साधनहीन मुसलमान जब मुशरिकों के क़रीब से गुज़रते तो वे कहते थे, "यही हैं जो हम लोगों में अल्लाह का सही ज्ञान रखनेवाले हैं।" लेकिन जब आवाज़ आम हो गई और उच्च परिवारों के नौजवानों तथा दासों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया, तो उन्हें महसूस हुआ कि मामला गंभीर है। अब इसे नज़रअन्दाज़ करने से भारी क्षति पहुँच सकती है, यही सोचकर उन्होंने तीव्र विरोध पर कमर कस ली।

2. नैतिक कारण : क़ुरैश की आजीविका व्यापार पर आश्रित थी।

दानशीलता, आतिथ्य-सत्कार, मज़दूरों की सहायता आदि यद्यपि उनकी लोक-कथाओं में अधिक महत्व रखते हैं, लेकिन जिस युग का हम उल्लेख कर रहे हैं, उस समय इन गुणों को क़िस्से-कहानियों से अधिक नहीं जानते थे। पूँजीवाद के तमाम अवगुण उनमें प्रगट होने शुरू हो गए थे। कुछ प्रमुख व्यक्तियों तथा परिवारों में व्यापार द्वारा धन-संग्रह से धार्मिक तथा नैतिक क्षेत्र में पतन और गिरावट आ गई थी, सूदी कारोबार देश के हर भाग में फैल गया था और ज़ुल्म की आँधी चलने लगी थी। ग़रीब व यतीम की सम्पत्ति पर अवैध ढँग से क़ब्ज़ा करने में कोई संकोच न करना, हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल समझौता वास्तव में इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम था।

अल-मसूअदी, हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल के मामले में यूँ बयान करता है कि अज्ञानता-काल में एक यमनी व्यापारी ने आस-बिन-वाइल के हाथ कुछ सामान बेचा। आस ने क़ीमत अदा करने से बचने के लिए हीले-बहाने शुरू किए, अन्ततः व्यापारी ने क्रोध में आकर आस की निंदा में एक क़सीदा (निंदा काव्य) लिखकर भेज दिया। उक्त क़सीदा ज़ुबैर-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब की नज़र से गुज़रा तो उन्हें इस से बड़ा दुख हुआ। उन्होंने तत्काल बनू-हाशिम, बनू-मुत्तलिब, असद, ज़ोहरा और तमीम के निष्पक्ष व्यक्तियों को अब्दुल्लाह-बिन-जुद्आन के घर बुलाकर हिलफ़ुल-फ़ुज़ूल समझौता की नींव रखी। उन्होंने समझौता किया कि हममें से हर एक ज़ालिम के ख़िलाफ़ मज़लूम की सहायता करेगा, चाहे ज़ुल्म करनेवाला अपना हो या पराया, हम उससे हक़ दिलाए बग़ैर शान्त न रहेंगे। (इब्ने-हिशाम, भाग-1, पृ॰ 141)

साक्ष्यों से पता चलता है कि पैग़म्बर (सल्ल॰) ने भी इस समझौते में शिरकत की थी। स्वयं पैग़म्बर (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि मैं अब्दुल्लाह-बिन-जुद्आन के घर किए जानेवाले समझौते में शरीक था और उसके विरुद्ध चलने के लिए मुझे लाल ऊँट दिया जाए तब भी मैं ख़ुश न हूँगा और अगर कोई मज़लूम मुझसे सहायता चाहेगा, तो मैं उसकी अवश्य ही सहायता करूँगा।

(इब्ने-हिशाम, भाग-1, पृ॰ 142)

क़ुरैश के नैतिक पतन का इस घटना से भी आभास मिलता है—

जब मुसलमान देश-छोड़कर हबशा चले गए तो क़ुरैश ने उन्हें वापस

लाने के लिए शिष्ट-मंडल भेजा। बादशाह ने मुसलमानों को बुलाकर उनके नए धर्म के बारे में पूछा, जिसे वे अपना चुके थे। उनमें से जाफ़र-बिन-अबू-तालिब ने बादशाह के आगे एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने इस्लाम से पहले के अपने जीवन तथा इस्लामी शिक्षाओं की व्याख्या करते हुए कहा—

"हम अज्ञानता-अन्धकार में पड़े हुए थे, बुतों को पूजते थे, मुर्दार खाते थे, दुष्कर्म करते थे, अपनों की हत्या करते थे, पड़ोसी का हक़ मारते थे, हममें का शक्तिशाली शक्तिहीनों का दमन करता था, चरित्रहीनता का जीवन हम जी रहे थे कि अल्लाह ने हममें से एक पैग़म्बर भेजा, जिनका उच्च वंशीय होना स्पष्ट, जिनकी सत्यप्रियता, दानशीलता मान्य। उन्होंने केवल एक ईश्वर की भक्ति तथा आज्ञापालन का आह्वान किया। उन्होंने हमें शिक्षा दी कि हम और हमारे पुरखे, जिन बुतों को पूजते थे, उन्हें हम छोड़ दें, सच बोलें, वादा निभाएँ, लोगों से अच्छा मामला करें, पड़ोसी से सद्-व्यवहार करें, दुष्कार्यों और हत्या से बचें। उन्होंने बुरे कार्य करने, झूठ बोलने से रोका, और पतिव्रता औरतों को आरोपित करने से मना किया।"

(इब्ने-हिशाम, भाग-1, पृ॰ 259, 260)

यह है उस युग का वास्तविक चित्र, जब मुहम्मद (सल्ल॰) पैग़म्बर बनाए गए थे, अतएव क़ुरआन ने भूखे को खाना खिलाने और यतीमों के सम्मान करने का सख़्ती से हुक्म दिया, तो कंजूस और यतीमों और दुर्बलों का शोषण करनेवाले लोगों के लिए यह बात असह्य थी। उन्होंने देखा कि क़ुरआन की इस शिक्षा से हमारा मान-सम्मान, प्रतिष्ठा धूल-धूसरित हो रही है, बल्कि उन्होंने इस स्वर को, ख़ून-पसीना एक करके कमाई हुई दौलत को समाज के बेकार लोगों में बाँटकर स्वयं को निर्धन बना देनेवाला, स्वर कहा। इसलिए हम कह सकते हैं कि मुहम्मद (सल्ल॰) के प्रति किया गया विरोध मात्र धार्मिक कारणों से नहीं है, बल्कि इसके पीछे आर्थिक कारण मौजूद थे।

3. सामाजिक कारण : अरब समाज का निर्माण क़बीलों की बुनियाद पर हुआ था। हर क़बीला एक-एक यूनिट की हैसियत रखता था। क़बीले और उसके व्यक्तियों के कार्य का पूरा क़बीला ज़िम्मेदार होता था। इसी कारण अच्छी और बुरी हालत और दूसरे मामलों में क़बीले के लिए अपनी जान तक

क़ुरबान कर देने को हर एक तैयार रहता था। क़बीले के स्वार्थ के मुक़ाबले में वे अपने व्यक्तित्व को कोई महत्व न देते थे। उनमें से हर एक मुत्तलिबी, हाशमी या कोई और हो सकता था, पर क़बीले से अलग होकर व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता था। क़बीले के बहुमत के ख़िलाफ़ जाना न केवल निरादर, बल्कि पाप का काम समझा जाता था। क़बीले से विद्रोह करनेवाले का अंजाम हमेशा एक ही होता था, अर्थात् क़बीले से उनको निकाल बाहर किया जाना। फिर वह कहीं दूर निकल जाने पर मजबूर होता था। ऐसा व्यक्ति किसी दूसरे क़बीले की शरण में पहुँच जाता। व्यक्ति की हैसियत समाज में मान्य नहीं थी, उसका अस्तित्व क़बीले के अस्तित्व में विलीन हो जाता था। अगर किसी क़बीले में वह विलीन नहीं होता तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी जान व माल की ज़मानत नहीं है और हर एक के लिए उसका माल छीन लेना और उसका प्राण ले लेना वैध था।

यह नियम मात्र सामाजिक महत्व का न था, बल्कि इसका धार्मिक महत्व भी था। आख़िरत (परलोक) की कोई कल्पना न होने के कारण उनके यहाँ 'दीन व दुनिया' केवल इतनी थी कि हर हाल में क़बीले और उसके सरदार के आदेश का पालन किया जाए, लेकिन इस्लामी शिक्षाएँ इसके बिलकुल विपरीत हैं। इसके अनुसार हर एक व्यक्ति से उसके निज की पूछताछ होगी और हर एक अपने कार्य का स्वयं ज़िम्मेदार होगा—

"कोई बोझ उठानेवाला किसी दूसरे का बोझ न उठाएगा।"

(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-15)

अगर कोई व्यक्ति ग़लती करता है तो उसका ज़िम्मेदार वह स्वयं है, न कि उसका परिवार और उसका क़बीला।

मक्का के नव-युवक ज्यों ही इस्लाम स्वीकार करने लगे, वहाँ के क़बीले के मज़बूत क़िले डोलने से लगे। दूसरे शब्दों में हर क़बीले और हर परिवार को उतने ही व्यक्तियों की क्षति हुई जितने इस्लाम स्वीकार कर चुके थे। अनुभवी बूढ़ों ने अनुमान लगा लिया कि ये नव-युवक अब अपने परिवार के हित में तलवार नहीं उठाएँगे और न ही क़बीले के दुश्मनों से लड़ेंगे।

4. राजनीतिक कारण : इस्लामी आन्दोलन के राजनीतिक महत्व को, हो

सकता है, पहले ही चरण में, लोगों ने महसूस न किया हो, लेकिन लम्बी मुद्दत तक वह इस भ्रम में पड़े रह भी नहीं सकते थे। उन्होंने जल्द ही समझ लिया कि इस्लाम के ग़लबे का अर्थ है अपनी सत्ता, अपनी प्रतिष्ठा, अपने राज्य और अपनी प्रभुता का अन्त। इस्लाम की रस्सी गले में डालनेवाला हर व्यक्ति, क़बीला और क़बीले के सरदार की, एक तलवार को कम करके इस्लाम के आवाहक हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की तलवार में वृद्धि करता है, इसलिए क़बीले के सरदारों ने समझ लिया कि बिना किसी अवरोध के यदि यह मुक़ाबला जारी रहा तो आज नहीं तो कल, इच्छा से या अनिच्छा के साथ, मुहम्मद (सल्ल॰) के आज्ञापालन पर हम स्वतः विवश हो जाएँगे।

मक्का में निवास करनेवालों की भारी संख्या क़ुरैश ख़ानदान की थी। यद्यपि इन सबके एक दादा हर्ब-बिन-मलिक थे, जो क़ुरैश की उपाधि से प्रसिद्ध हुए थे, लेकिन समय के साथ-साथ इनमें आपस के झगड़े उठ खड़े हुए थे। उदाहरण के तौर पर हर्ब के दो बेटे अदी और मुर्रा थे। उनकी औलाद बनू-अदी और बनू-मुर्रा आपस में एक-दूसरे के दुश्मन थे। मुर्रा की दो औलाद थीं...किलाब और यक़ज़ा और किलाब के क़ुसई, ज़हरा दो बेटे थे और मख़ज़ूम यक़ज़ा की औलाद थी। बनू-ज़हरा और बनू-क़ुसई एक तरफ़ और बनू-मख़ज़ूम दूसरी तरफ़ होकर आपस में लड़-कट रहे थे। क़ुसई बुद्धिमान थे और साथ-ही-साथ सरदार भी थे। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता, साहस और सरदारी को काम में लाकर आपस में झगड़ते हुए क़ुरैश को एक पंक्ति में ला खड़ा किया। क़ुसई के बाद क़ौम की सरदारी उसके बेटे अब्दे-मनाफ़ के हिस्से में आई। अब्दे-मनाफ़ अपने पिता की तरह योग्य और बुद्धिमान था। उसके विरुद्ध विद्रोह करने का किसी में साहस न हुआ, लेकिन उनकी दो सन्तानों हाशिम और अब्दे-शम्स की औलादें दोबारा संघर्षरत हो गईं। बनू-अब्दे-शम्स बनू-हाशिम को दबाने की घात में लगे हुए थे। हाशिम का बेटा अब्दुल-मुत्तलिब (शैबा) बहुत योग्य था, इसलिए उनकी मृत्यु तक बनू-अब्दे-शम्स की कोई चाल न चल सकी। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद पतन के चिह्न स्पष्ट दीख पड़ने लगे। बनू-हाशिम के बजाय बनू-अब्दे-शम्स को हर्ब-बिन-उमैया क़ौम का सरदार मान लिया गया।

अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे अबू-तालिब (हज़रत अली के पिता जिनका वास्तविक नाम अब्दे-मनाफ़ था) बनू-हाशिम के सरदार चुने गए। यद्यपि वे साफ़ और खुले दिल के व्यक्ति थे, लेकिन कम हैसियत और बड़े परिवार का बोझ उठानेवाले थे। इसलिए बनू-हाशिम को पहले जैसा स्थान प्राप्त न हो सका। पैग़म्बर (सल्ल॰) इन्हीं अबू-तालिब के भतीजे थे। जब तक अब्दुल-मुत्तलिब जीवित रहे, इन्होंने यतीम पोते (मुहम्मद सल्ल॰) को बड़े स्नेह से पाला-पोसा। अतएव अब्दुल-मुत्तलिब के देहावसान के बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) का बोझ भी अबू-तालिब पर आ पड़ा।

ये थे वे कारण, जिनसे पैग़म्बर (सल्ल॰) को क़बीलागत संघर्ष तथा वैमनस्य का सामना करना पड़ा।

मुहम्मद (सल्ल॰) के सबसे बड़े शत्रु बनकर अबू-सुफ़ियान और अबू-जहल सामने आए। सुफ़ियान बनू-हाशिम के सबसे बड़े शत्रु हर्ब-बिन-उमैया-बिन-अब्दे-शम्स का बेटा था और अबू-जहल मख़ज़ूमी का। मुर्रा-बिन-काब के पोते मख़ज़ूम की औलाद में से था। मख़ज़ूम की मृत्यु के बाद इस परिवार की सरदारी वलीद-बिन-मुग़ीरा (इस्लामी सेनाओं के मान्य सेनापति ख़ालिद-बिन-वलीद के पिता) के हिस्से में आई। वलीद की मृत्यु के बाद बनू-मख़ज़ूम की सरदारी वलीद के भतीजे अबू-जहल को मिली। वलीद बुज़ुर्ग और अपेक्षतः सज्जन था जबकि अबू-जहल नौजवान, भावुक, पाषाण हृदयी और किसी को भी न क्षमा करनेवाला था। उसका मूल नाम अम्र और उपाधि अबू-जहल थी। उसकी योग्यता तथा दूरदर्शिता सर्वमान्य थी। मक्का की लोकतंत्री संसद (दारुन्नदवा) के नियमानुसार उसका सदस्य चालीस वर्ष से कम का कोई व्यक्ति न हो सकता था, लेकिन मक्कावालों ने अम्र-बिन-हिशाम (अबू-जहल) को तीस वर्ष की आयु ही में दारुन्नदवा का सदस्य चुना, जिससे अबू-जहल की दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। बनू-मख़ज़ूम एक लम्बे समय से क़ुरैश से दुश्मनी रखते थे, लेकिन क़ुसई, अब्दे-मुनाफ़, हाशिम और अब्दुल-मुत्तलिब के युग में कोई खुला विरोध न कर सका था। अब्दुल-मुत्तलिब की मृत्यु के बाद बनू-हाशिम कमज़ोर हो गए और बनू-मख़ज़ूम अपनी सरदारी के सपने देखने लगे।

क़ौम की सरदारी चाहनेवाले किसी भी व्यक्ति का दानी, आतिथ्य-सत्कार करनेवाला और खुले दिल का होना उस समय आवश्यक समझा जाता था। हर वर्ष, हर मौक़े पर, हर क्षेत्र के लोग मक्का में जमा होते थे। लोगों में अपना प्रभाव चाहनेवाला हर एक व्यक्ति उन दिनों में अपनी दानशीलता और आतिथ्य-सत्कार में दूसरों पर बाज़ी ले जाने की कोशिश करता था। ये मेहमान लौटकर अपने क्षेत्रों में जाते तो अपने उपकारी की प्रशंसा करते, कवि उसकी प्रशंसा में कविताएँ लिखते, तीर्थ-यात्री उसकी दानशीलता, उसके आतिथ्य-सत्कार के अनोखे-अनोखे क़िस्से मशहूर कराते। व्यापारी उसके गुणगान करते न अघाते। इस प्रकार उस व्यक्ति की ख्याति देश के कोने-कोने में फैल जाती।

बनू-मख़ज़ूम क़ुरैश की सरदारी प्राप्त करने की अत्यधिक कोशिश कर रहे थे, लेकिन हर्ब-बिन-उमैया की योग्यता तथा क्षमता के आगे उनको अपनी सफलता में सन्देह होने लगा, पर हर्ब के बाद उसके बेटे अबू-सुफ़ियान को यद्यपि बनू-मख़ज़ूम का सरदार चुन लिया गया, लेकिन उसमें अपने पिता जैसी बुद्धिमत्ता तथा योग्यता न थी, इसलिए दूसरे बनू-मख़ज़ूम अबू-सुफ़ियान से आगे बढ़ गए। पहले वलीद-बिन-मुग़ीरा और बाद में अबू-जहल क़ुरैश के सरदार माने गए।

पैग़म्बर (सल्ल०) ने जब नुबुव्वत (पैग़म्बरी) का दावा किया तो किसी ने अबू-जहल से इस तरह प्रश्न किया—

"अबुल-हकम! मुहम्मद क्या कुछ दावा कर रहा है, क्या तूने सुना नहीं? इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है?"

इस प्रश्न के उत्तर में अबू-जहल ने जो कुछ कहा, उसमें पारिवारिक विद्वेष की झलक आसानी से देखी जा सकती है। वह कहता है—

"मित्र! सुनने के लिए क्या है? हमने बनू-अब्दे-मनाफ़ से हर उच्च पद प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया। जब उन्होंने आतिथ्य-सत्कार किया, हमने भी किया, उन्होंने कमज़ोर की सहायता की, तो हमने भी की। उन्होंने लोगों का बोझ उठाया तो हमने भी उठाया और इस तरह के मुक़ाबले में हमारे बाज़ू

उनके बाज़ू से जा लगे (हम उनसे आगे जानेवाले थे) कि देखो, उन्होंने एक नया रास्ता निकाला है। उन्होंने दावा किया कि हममें पैग़म्बर पैदा हो गया है, जिसको आसमान से वह्‌य मिलती है। इस प्रकार की चीज़ हम नहीं जानते। अल्लाह की क़सम! हम उसपर कभी ईमान न लाएँगे और न उसकी बात मानेंगे। (इब्ने-हिशाम, भाग-1, पृ॰ 337-338)

अर्थात् अबू-जह्ल के विचार से बनू-अब्दे-मनाफ़ का एक व्यक्ति पैग़म्बरी के इस दावे से अपने क़बीले के पद को बहाल करना और शत्रु क़बीले के पद को गिराना चाहता है। इस प्रकार वह किसी हालत में उस पैग़म्बर पर ईमान नहीं ला सकता?

तात्पर्य यह कि पैग़म्बर (सल्ल॰) के विरोध के पीछे उपरोक्त तमाम कारण कार्य कर रहे थे। लोगों ने पैग़म्बर (सल्ल॰) का विरोध धार्मिक ढंग का ही जारी रखा कि यह बुतों की निंदा करता है, पुरखों को गुमराह और जहन्नमी कहता है। स्वार्थियों ने पैग़म्बर (सल्ल॰) का विरोध शुरू किया कि उनके अत्याचार तथा शोषण को पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बुरा कहा और कमज़ोरों की सहायता तथा दान-पुण्य पर उभारा। अपनी प्रतिष्ठा तथा मान-सम्मान के समाप्त होने के भय से वे लोग पैग़म्बर (सल्ल॰) के विरोधी बन गए। अपने दुश्मन बनू-हाशिम क़बीले के एक नव-युवक के सामने सिर झुकाने की भावना ने भी विरोध करने पर उकसाया।

(इसके अतिरिक्त कुछ कारणों का उल्लेख अल्लामा शिबली ने अपनी पुस्तक 'सीरतुन्पैग़म्बर' के प्रथम भाग पृ॰ 212-214 में किया है, लेकिन वास्तव में वे सब बाद ही में पैदा हुए थे। आरम्भ में उपरोक्त कारण ही विरोध के कारण बने।)

क़ुरैश के प्रतिनिधि अबू-तालिब के सामने समय-समय पर इन दलीलों को प्रस्तुत करते थे।

आरम्भ में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की पैग़म्बरी और सन्देश को क़ौम के सरदारों ने इतना अधिक महत्व नहीं दिया था। (तबरी भाग-3, पृ॰ 1180 उमवी ख़लीफ़ा अब्दुल-मलिक-बिन-मरवान को उर्वा-बिन-ज़ुबैर का पत्र) लेकिन उन्होंने समस्या के महत्व का अनुमान लगाया तो उनकी आँखें खुल

गई। वे आपस में बढ़ती हुई इस इनसानी जमाअत की प्रतिरक्षा पर मशवरा करने लगे। अन्ततः क़ुरैशी सरदारों को अबू-तालिब ने सन्तुष्ट करके वापस कर दिया। लेकिन पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अपना सन्देश बराबर जारी रखा।

अतएव पहले से अधिक व्यक्ति पैग़म्बर (सल्ल॰) का आह्वान स्वीकार करने लगे। इससे क़ुरैश और भड़क उठे। उनके धैर्य का पैमाना लबालब भर गया। एक और शिष्ट-मंडल अबू-तालिब के पास गया और उन्होंने धमकी दी कि अगर मुहम्मद (सल्ल॰) उस काम से न रुके तो उनके विरुद्ध शक्ति परीक्षण होने लगेगा और अगर अबू-तालिब ने प्रतिरक्षा की तो उस समय तक लड़ाई जारी रहेगी, जब तक कि एक-एक फ़रीक़ ख़त्म न हो जाए।

इससे कोई विशेष परिणाम न निकला। तब उन्होंने एक दूसरा हल लेकर अबू-तालिब से भेंट की कि क़ुरैश के उच्च परिवार के एक सच्चरित्र युवक को अबू-तालिब बेटे के रूप में लेकर मुहम्मद (सल्ल॰) को उनके हवाले कर दें, उनकी माँग को अबू-तालिब ने खुले शब्दों में रद्द कर दिया और शिष्ट-मंडल यह कहकर वापस हुआ कि सम्मानपूर्वक अबू-तालिब ने कोई मांग स्वीकार नहीं की है।

इसके साथ ही पैग़म्बर (सल्ल॰) और उनके साथियों का खुलकर विरोध शुरू किया।

दमन-चक्र

दमन-चक्र शुरू करते ही क़ुरैश ने निर्णय लिया कि हर एक क़बीला और परिवार अपने भीतर मुसलमान होनेवाले व्यक्तियों पर अत्याचार करेगा, यहाँ तक कि वे इस्लाम से फिर जाएँ।

अबू-जह्ल शारीरिक कष्ट देने के अतिरिक्त कष्ट पहुँचाने के लिए मनोवैज्ञानिक अस्त्र भी इस्तेमाल किया करता था। कोई सम्मानित तथा श्रेष्ठ व्यक्ति इस्लाम स्वीकार करता तो अबू-जह्ल उसे विभिन्न तरीक़ों से रुस्वा करने का यत्न करता और कहता, "हम तेरी मूर्खता का अन्त करेंगे, तुझे अति अपमानित करेंगे, इसलिए कि तू पुरखों का धर्म छोड़ चुका है, जो तुझसे अधिक सक्षम और समझदार थे।" अगर इस्लाम लानेवाला व्यक्ति व्यापारी

होता तो अबू-जह्ल यूँ धमकी देता और कहता, "हम भी देखें कि तू यहाँ किस प्रकार अपना माल बेचता है, तेरी पूरी पूँजी नष्ट करके ही हम चैन लेंगे।"

अब अगर इस्लाम स्वीकार करनेवाला व्यक्ति दुर्बल और धनहीन होता, तो अबू-जह्ल उसे अति शारीरिक कष्ट पहुँचाता और दूसरों को इसका प्रलोभन देता। (इब्ने-हिशाम)

इसी कारण शारीरिक कष्ट उन मुसलमानों को दिया गया जो या तो पास थे या इस्लाम लाने के कारण क़बीले से निकाले गए थे। ख़ब्बाब-बिन-अरत, बिलाल-बिन-रबाह, अबू-फ़क़ीह, यासिर, अम्मार-बिन-यासिर, सुहैब रूमी और दासियों में से न जाने कितने अपने स्वामियों के दमन-चक्र का शिकार हुए। इन अत्याचारों की कथा का अध्ययन करते वक़्त मन सिहर उठता है। पर इतने सब अत्याचार सहन करने के बावजूद उनमें से एक का भी क़दम डगमगाया नहीं। उन्हीं में से अधिसंख्य को हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) तथा अन्य धनी मुसलमानों ने ख़रीदकर आज़ाद कर दिया और जो इस प्रकार स्वतन्त्र न किए गए, वह लम्बी मुद्दत तक अत्याचारों का शिकार हुए।

इन निर्धनों की हालत अति दुखद थी। वे अपने स्वामी की मिल्कियत थे। उनसे हर तरह का मामला करने का स्वामियों को हक़ था, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य मुसलमानों की हालत दयनीय नहीं थी, वे भी अत्याचारों से बच न सके। हज़रत उसमान-बिन-अफ़्फ़ान (रज़ि॰) यद्यपि बनू-उमैया के मालदार व्यक्ति थे लेकिन उनके चाचा अम्र-बिन-अबिल-आस उन्हें रस्सी से बाँधकर मारते थे। सईद-बिन-ज़ैद बनू-अदी के व्यक्ति थे। हज़रत उमर (रज़ि॰) की बहन फ़ातिमा उनके निकाह में थीं। इन मियाँ-बीवी के इस्लाम लाने की वजह से हज़रत उमर (रज़ि॰) तलवार लेकर उनके क़त्ल को तैयार हो गए। जब बहन ने बचाव किया, तो उसे भी घाव लग गए।

इसी तरह अब्दुल्लाह-बिन-अस्अद, अबू-ज़र ग़िफ़ारी और ज़ुबैर-बिन-अब्बास (रज़ि॰) जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी दमन-चक्र के शिकार हुए।

मुस्लिम व्यापारियों को अबू-जह्ल ने धमकी दे दी थी कि हम तुमसे

व्यापार नहीं करेंगे। इसके लिए उदाहरण के रूप में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) का मामला ही काफ़ी है। जब अबू-बक्र (रज़ि॰) इस्लाम लाए, तो उनके पास चालीस हज़ार दिरहम थे, लेकिन तेरह वर्ष बाद अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) पैग़म्बर (सल्ल॰) के साथ मदीना जाने के लिए निकले तो उनके पास सिर्फ़ पाँच सौ दिरहम रह गए थे। (इब्ने-साद, भाग-3, पृ॰ 112)

इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने इस्लाम के लिए बड़ी आर्थिक सेवाएँ की हैं। अत्याचारों का शिकार कितने ही दासों को उन्होंने ख़रीदकर आज़ाद किया। इन दासों के स्वामी मुँह माँगी क़ीमत वुसूल करते थे।

बहरहाल अगर उनका व्यापार बिलकुल समाप्त न होता तो उनकी पूँजी में इतना बड़ा अन्तर नज़र नहीं आता।

अपने क़बीले के शरण में जीवन बितानेवाले व्यक्ति पर अत्याचार करने की ज़िम्मेदारी अबू-जहल ने स्वयं ले ली थी। पैग़म्बर (सल्ल॰) भी उसी के शिकार थे। यद्यपि बनू-हाशिम और बनू-अब्दे-मनाफ़ कमज़ोर हो गए थे, लेकिन इस सीमा तक नहीं कि अपने एक व्यक्ति पर कोई दूसरा क़बीला ज़ुल्म करे और वे ख़ामोश रहें, इसलिए पैग़म्बर (सल्ल॰) पर अत्याचार करने से लोग डरते थे। उनको डर यह था कि कहीं बनू-हाशिम एक साथ उनपर धावा न बोल दें।

जब अबू-तालिब को यह सूचना मिली कि मुसलमानों पर सामूहिक रूप से अत्याचार करने की योजना बन चुकी है, तो उन्होंने इस समस्या पर मशवरा करने के लिए बनू-हाशिम को तलब किया और उनके सामने पैग़म्बर (सल्ल॰) की सुरक्षा का महत्व स्पष्ट किया और इस समस्या पर अबू-लहब के अतिरिक्त पूरे बनू-हाशिम सहमत थे।

अबू-लहब-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब का मूल नाम अब्दुल-उज़्ज़ा था। उज़्ज़ा नामी बुत से सम्बन्ध जोड़ने के कारण उसे यह नाम मिला था। यह पैग़म्बर (सल्ल॰) का चचा और अबू-तालिब का सगा भाई था। क़बीलागत जीवन की रीतियों के अनुसार उसकी ज़िम्मेदारी थी कि बनू-हाशिम के साथ मिलकर मुहम्मद (सल्ल॰) की सुरक्षा करता, लेकिन उसने अबू-सुफ़ियान की बहन

हर्ब-बिन-उमैया की बेटी उम्मे-जमीला से निकाह किया। पत्नी का पूरा परिवार पैग़म्बर (सल्ल॰) के विरोध पर उतारू था और इस विषय में अबू-लहब ने ससुराली रिश्तेदारों का साथ दिया।

एक और घटना भी बयान की जाती है। जब सईद-बिन-आस-बिन-उमैया की मौत का समय निकट आया तो अबू-लहब उससे मिलने गया। उसने देखा कि सईद की आँखों से निरन्तर आँसू बह रहे हैं। अबू-लहब ने आश्चर्य से प्रश्न किया, "क्या मौत के डर से रो रहे हो?" सईद ने उत्तर दिया, "नहीं! मैं इस विचार से रो रहा हूँ कि मेरे बाद उज़्ज़ा (एक बुत) की पूजा कौन करेगा?" यह सुनकर अबू-लहब ने कहा, "आपकी ज़िन्दगी में लोग उज़्ज़ा की पूजा करते थे, पर आपके भय से ऐसा नहीं था, लोग अपनी इच्छा से करते थे इसलिए आपकी मृत्यु के बाद भी जिनको पूजना होगा, वे तो पूजेंगे ही।"

यह सुनकर सईद बहुत ख़ुश हुआ, कहने लगा कि यह देखकर प्रसन्नता हुई कि मेरे बाद मेरा उत्तराधिकारी मौजूद है, अतएव अब मुझे अपने मरने का बिलकुल दुख नहीं। अबू-लहब ने अपना वादा निभाया, आजीवन उज़्ज़ा की पूजा करता रहा।

(किताबुल-अस्नाम, अबुल-मुंज़िर हिशाम अल-कलबी)

उस ज़माने में अबू-जह्ल ने खुलकर पैग़म्बर (सल्ल॰) को गालियाँ देने तथा आप (सल्ल॰) का मज़ाक़ उड़ाने की मुहिम शुरू की, बल्कि कुछ शारीरिक कष्ट भी पहुँचाए। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने न उसका उत्तर दिया और न कोई कार्रवाई की, बल्कि पूरे धैर्य के साथ अपने मिशन में लगे रहे, पर यह घटना सुनकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) गुस्से में भरे हुए काबा के पास आए जहाँ अबू-जह्ल तथा अन्य क़ुरैशी सरदार बैठे हुए थे। जाते ही हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) ने अपनी धनुष अबू-जह्ल के सिर पर रसीद की और घायल किया और कहा, "क्या तू मुहम्मद को गाली देगा? तो यह देख, में भी मुहम्मद का दीन स्वीकार करता हूँ, साहस हो तो उठकर आओ।" अबू-जह्ल के परिवार बनू-मख़ज़ूम के कुछ व्यक्ति हज़रत हमज़ा का मुक़ाबला करना चाहते थे, पर स्वयं अबू-जह्ल

ने बीच-बचाव करके मामला समाप्त किया। मामले को बढ़ाने से होनेवाली हानियों का चतुर अबू-जह्ल को अनुमान था।

हज़रत हमज़ा के इस्लाम स्वीकार कर लेने के बाद क़ुरैश के सरदारों ने इस समस्या को महत्व देकर इसपर फिर से विचार करना आरम्भ किया। किसी समझौते पर तैयार होने के उद्देश्य से उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल॰) से मुलाक़ात का निर्णय किया।

उत्बा-बिन-रबीआ-बिन-अब्दे-शम्स ने पैग़म्बर (सल्ल॰) से इस प्रकार अर्ज़ किया, "मेरे भतीजे! तूने क़ौम की एकता को समाप्त कर दिया। उनके विश्वासों तथा आस्थाओं को ग़लत बताया, उनके उपास्यों की निंदा की। मैं तेरे सामने कुछ बातें रखता हूँ, इसमें से जो भी चाहो तुम स्वीकार कर सकते हो। तू अगर मालदार बनना चाहता है तो हम तुझे इतना माल देंगे कि तू हममें सबसे बड़ा दौलमन्द बन जाएगा। अगर तू पद चाहता है, तो तुझे क़ौम का सरदार मान लेंगे, तेरे हुक्म के ख़िलाफ़ एक पत्ता भी न हिलेगा। अगर तू हमारा बादशाह बनना चाहता है, तो हम इसके लिए भी तैयार हैं। अगर तुझे कोई शैतानी असर हुआ है, तो हम उसका भी इलाज करा देंगे, इस सम्बन्ध में तमाम ख़र्चे हम स्वयं करेंगे।

जब उत्बा बात ख़त्म कर चुका, तो मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आपको जो कहना था, वह कह चुके, क्या अब मेरी बात सुन सकते हैं?"

उत्बा ने कहा, "ज़रूर।"

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने क़ुरआन मजीद की सूरा-41 हा-मीम का आरम्भ से पाठ किया और जब तिलावत के सजदे का मौक़ा आया तो पैग़म्बर (सल्ल॰) ने सजदा किया और फ़रमाया, "अबुल-वलीद! ध्यान से सुन लिया? यह है मेरा उत्तर।"

उत्बा लज्जित होकर सिर झुकाए चल दिया। मित्रों के पास पहुँचकर यूँ बोला, मित्रो! "मैंने आज कुछ चमत्कारपूर्ण वाणी सुनी है, न वह जादू है और न कविता। अगर मेरी बात मानो, तो उसे उसके हाल पर छोड़ दो।"

सबने एक स्वर में कहा, "ख़ुदा की क़सम! मुहम्मद ने तुमपर अपना

जादू चला दिया।"

उत्बा ने कहा, "मुझे जो कुछ कहना था, मैं कह चुका, अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।"

इसके बाद क़ुरैश ने एक बड़ी सभा में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) को निमंत्रित किया। उपरोक्त बातें आप (सल्ल॰) के सामने रख दीं। उसके उत्तर में आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं किसी प्रकार का पद नहीं चाहता, मैं ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला बनाकर भेजा गया हूँ। मेरी मानोगे तो यहाँ भी और परलोक में भी सफल रहोगे। न मानोगे तो अल्लाह हमारे-तुम्हारे बीच फ़ैसला करनेवाला है।

इसके बाद मुहम्मद (सल्ल॰) से लोग अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। लोग कह रहे थे—

"अपने पालनहार से कहिए कि मक्का में एक नहर जारी कर दे। आसपास की घाटियों को बदलकर उसे एक समतल मैदान बना दे।"

हमारे मृत पुरखों को जीवित करने की अपने ईश्वर से दुआ करो।"

जब कोई बात न बनी, तो क़ुरैश के एक व्यक्ति ने कहा, "हमने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर ली। अब हम तुझे छोड़नेवाले नहीं हैं। या तो हम तुझे समाप्त करेंगे या तू हमें समाप्त करेगा। दोनों में से एक बात न होने तक हम शान्त न बैठेंगे।"

इसके बाद क़ुरैश पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) को भी कठोर यातनाएँ देने लगे। एक बार उन्होंने काबा के पास पैग़म्बर (सल्ल॰) को पकड़ा और आप (सल्ल॰) की गरदन में तेहबन्द बाँधकर आप (सल्ल॰) को खींचने लगे। अगर हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) मौक़े पर न पहुँचते तो ज़ालिम आप (सल्ल॰) को ज़िन्दा न छोड़ते।

इसी तरह क़ुरैश ने एक मौक़े पर हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) को मारा-पीटा और आप (सल्ल॰) की दाढ़ी के बाल नोच डाले।

इसके बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) जहाँ भी निकलते लोग आप (सल्ल॰) को कष्ट पहुँचाते और गाली देते, पैग़म्बर (सल्ल॰) के मार्ग में काँटे डालते, पैग़म्बर (सल्ल॰) के घर के सामने गन्दगी के ढेर डाल देते। तात्पर्य यह कि

मुसलमानों का मक्का में रहना बिलकुल असम्भव हो गया। शत्रुओं के अत्याचारों से वे कहीं भी बचे हुए न थे। जब भी मुसलमान आकर पैग़म्बर (सल्ल॰) से शिकायत करते तो आप (सल्ल॰) धैर्य धारण करने की शिक्षा देते।

लेकिन यह स्थिति अधिक दिनों तक सहन नहीं की जा सकती थी। अन्ततः पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मुसलमानों को हबशा की तरफ़ हिजरत करने की अनुमति दे दी। इस हिजरत के कई कारण बताए जाते हैं। बहरहाल मूल कारण क़ुरैश के अत्यधिक अत्याचार ही थे, लेकिन एक आश्चर्यजनक बात यह भी थी कि वे निर्धन तथा निर्बल मुसलमान हिजरत नहीं करते हैं, जिन्हें स्वयं उनके क़बीलेवालों ने शरण देने से इनकार कर दिया था। फिर जानेवाले कौन थे? विभिन्न परिवारों के सक्षम तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति। उनके अधिसंख्य के बारे में इतिहास से कोई अनुमान नहीं हो पाता, जिससे यह जाना जा सके कि वे अत्याचारों से पीड़ित थे। किसी अन्य कारण से गए हों इसका भी पता नहीं चलता है।[1]

1. यद्यपि वे सब सक्षम तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, लेकिन उनपर होनेवाले अत्याचारों से इनकार ठीक नहीं जान पड़ता, उनके क़बीलेवाले ही उनपर अत्याचार करते थे। इसी कारण पैग़म्बर (सल्ल॰) की अनुमति से लोग हबशा हिजरत कर गए।

हज़रत उसमान (रज़ि॰) उस वक़्त के मुसलमानों में सर्वाधिक धनी थे, लेकिन इसके बावजूद उनके चचा अम्र-बिन-अबिल-आस ने उन्हें रस्सी से बाँधकर मारा-पीटा। (लेखक ने स्वयं इसका उल्लेख किया है) परिवार का कोई व्यक्ति उनकी सहायता के लिए आगे न आया।

दूसरे एक प्रमुख व्यक्ति ज़ुबैर-बिन-अब्बास (रज़ि॰) थे, जिन्हें उनके चचा नौफ़ल-बिन-ख़ुवैलिद ने मारा-पीटा। उस दुष्ट ने उन्हें चटाई में लपेटकर बाँध दिया। और उनकी नाक में धुआँ कर दिया जिससे उनका दम घुटने लगा।

मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) को बाप ने ज़ंजीर से बाँध दिया था। काफ़ी समय तक वे इसके कष्ट को भोगते रहे। ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि॰) को उनके घरवालों ने घर में बन्द करके खाना-पीना देने से रोक दिया था, पड़ोस के लोगों से कहा गया कि न तो उनकी सहायता की जाए, न बात की जाए। आख़िर एक दिन मौक़ा पाकर वहाँ से भाग गए। कुछ दिन मक्का के पास-पड़ोस ही में छिपे रहे और हिजरत करनेवाले दूसरे ग्रुप के साथ वे भी हबशा रवाना हो गए। सलमा-बिन-हिशाम (रज़ि॰) को उनके भाई अबू-जह्ल ने कष्ट पहुँचाया और अपमानित किया। (प्रकाशक)

पश्चिमी लेखकों ने बहुत से कारण बताए हैं, जो दूर की कौड़ी ही जान पड़ती है। उनमें से केवल एक कारण ही ऐसा है जिसका परिस्थितियाँ साथ दे पाती हैं।

इस्लाम से विमुख करके पुरखों के धर्म की ओर लाने के लिए क़ुरैश बराबर कोशिश करते रहते थे। अबू-तालिब और पैग़म्बर (सल्ल॰) से कोई समझौता न होने के कारण क़ुरैश के हर परिवार ने अपने यहाँ मुस्लिम व्यक्तियों को दमन-नीति अपनाकर, इस्लाम से वापस लाने की कोशिश शुरू की। (तबरी, भाग-3, पृ॰ 1180-1181) उर्वा-बिन-ज़ुबैर ने ख़लीफ़ा अब्दुल-मलिक-बिन-मरवान के नाम अपने एक पत्र में भी इसी का उल्लेख किया है। (हदीस : बुख़ारी, किताबुल-ईमान)

क़ुरैश के सरदारों ने इस समस्या पर विचार किया कि अपने परिवार के व्यक्तियों को इस्लाम स्वीकार करने तथा मुहम्मद (सल्ल॰) के आज्ञापालन से किस प्रकार रोका जाए। अबू-जह्ल के उपहास करने का भी उद्देश्य यही था। अबू-जह्ल ने मुसलमानों को लज्जित करने के लिए मुसलमानों से बराबर यही कहना शुरू कर दिया था कि तुम्हारे पुरखे तुमसे बेहतर थे तथा बुद्धिमान थे, इसके बावजूद तुमने उनकी राह छोड़कर नई राह बनाई। निरन्तर गिरनेवाले पानी की बूँद पत्थर पर भी अपना चिह्न अंकित करती है। मनोवैज्ञानिक ढंग से इस उपहास का उद्देश्य यह था कि कम-से-कम कमज़ोर व्यक्ति ही, बराबर किए जा रहे इस उपहास का प्रभाव ग्रहण करेंगे। इस्लाम उनके लिए एक नई बात थी, उसके प्रभाव अब भी सुदृढ़ न हो पाए थे, उसका वातारण उनके विश्वासों तथा विचारों से बिलकुल भिन्न तथा प्रतिकूल था। राष्ट्रीय क़िस्सों तथा कहानियों का प्रभाव हर दिन उनके अनुभव में आ रहा था। लोग कड़ी परीक्षाओं में फँसे हुए थे। अतएव, पैग़म्बर (सल्ल॰) ने महसूस किया कि इस विषैले वातावरण से उनका दूर चला जाना ही उनके हित में होगा और इस प्रकार आप (सल्ल॰) ने उनको हबशा की ओर हिजरत करने की अनुमति दे दी।

लेकिन मुसलमानों को जो शरण मिली, वह क़ुरैश को कदापि पसन्द न आई। उन्होंने हबशा में भी मुसलमानों को नहीं छोड़ा। इसका कारण भी

स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। मक्का के उस समय के क़ानूनों के अनुसार ये शरणार्थी किसी प्रकार अपराधी समझे जाने के अधिकारी न थे। कोई दंडनीय अपराध उन्होंने किया था नहीं, अतएव वे किसी प्रकार भी छिपकर भागनेवाले अपराधी न थे। इसके बावजूद क़ुरैश उनका पीछा नहीं छोड़ते।

क़ुरैश न दो व्यक्तियों को चुनकर हबशा के बादशाह (नजाशी) के पास रवाना किया। ये दोनों व्यक्ति बहुत सा-माल तथा उपहार ले गए। हबशा का शाही परिवार तथा जनता ईसाई थी। क़ुरैशी शिष्ट-मंडल ने महल में हाज़री से पहले ही ईसाई पादरियों से साँठ-गाँठ की कोशिश की। हर एक पादरी के सामने उपहार प्रस्तुत करते हुए यूँ बोले, 'जब हम बादशाह सलामत से मुसलमानों के सम्बन्ध में बात करेंगे, तो आप बादशाह को सुझाव दें कि वह मुसलमानों को लौटा दे।' पादरियों ने हामी भर ली।

फिर वे शाही महल में उपहार लेकर पहुँचे, मुसलमानों को वापस करने की बात कही, लेकिन उनकी चाल चल न सकी। पीड़ितों को वापस करने के लिए नजाशी तैयार न हुआ, बल्कि उसने उपहार भी वापस कर दिए। इस प्रकार क़ुरैशी शिष्ट-मंडल की विफलता से घबराए हुए क़ुरैश को इसी बीच हज़रत उमर (रज़ि॰) के इस्लाम स्वीकारने से बड़ी घबराहट हुई, परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने अत्याचारों की गति और तेज़ कर दी।

इस तरह निरन्तर विफलताएँ क़ुरैश की आँखें खोल देने के लिए काफ़ी थीं। यदि उनके पास कुछ भी सूझ-बूझ होती, तो वे समझ सकते थे कि इससे भी बड़ी कोई शक्तिशाली अनदेखी शक्ति कार्य कर रही है, लेकिन उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर रखीं, बल्कि निरन्तर विफलताओं ने जलते में तेल का काम किया। उनकी दुश्मनी की आग भड़क उठी। इस 'उपद्रव' की जड़ के अन्त का उन्होंने निर्णय किया।

किसी प्रकार पैग़म्बर (सल्ल॰) की हत्या करने की क़ुरैश में प्रबल इच्छा पैदा हुई, लेकिन इस राह की सबसे बड़ी बाधा मुहम्मद (सल्ल॰) का परिवार था। हर विरोध के समय उनकी रुकावट सामने आती थी। अन्ततः उन्होंने निर्णय किया कि बनू-हाशिम और बनू-मुत्तलिब से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया जाए पर वे विफल हुए, इसलिए उन्हें आशा थी कि बनू-हाशिम पैग़म्बर

(सल्ल॰) को अपने से अलग कर देंगे या कहीं दूर रवाना कर देंगे। तमाम क़ुरैशी सरदारों ने मिलकर एक हलफ़नामा लिखा, जिसकी शर्तें निम्न थीं—

1. बनू-हाशिम और बनू-मुत्तलिब से निकाह का ताल्लुक़ न जोड़ा जाए, न उनसे लड़कियाँ ली जाएँ और न उन्हें लड़कियाँ दी जाएँ।

2. उनसे लेन-देन की अनुमति नहीं है, न उनको कोई चीज़ बेची जाए और न उनसे स्वीकार की जाए।

इस दस्तावेज़ पर सबने हस्ताक्षर किए और मुहर लगाई। घोषणा के लिए उसे काबा पर लटका दिया गया। उद्देश्य यह था कि तमाम लोग जान जाएँ कि पैग़म्बर (सल्ल॰) के परिवार से न लेन-देन किया जाए और न ही शादी-ब्याह किया जाए।

बनू-हाशिम ने आपस में मशवरा किया कि अपने परिवार की घाटी (शिअबे-अबी-तालिब) में जमा हो जाएँगे। ऐसा इसलिए किया गया कि एक साथ रहने से आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे के काम आ सकेंगे और बिखरे हुए होने पर क़ुरैश के दमन-चक्र से बचना सम्भव न हो सकेगा। अबू-लहब को छोड़कर पूरा परिवार वहाँ इकट्ठा हो गया। दो तीन वर्ष उन्होंने अवर्णनीय परेशानियों और कठिनाइयों को झेला। कई बार पेड़ों के पत्ते और छालें खा-खाकर पेट की आग बुझाई। अन्ततः अल्लाह ने विरोधी गरोह में से ही, सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति पैदा किए। उन्होंने इन अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। अबू-जह्ल के विरोध के बावजूद इस दस्तावेज़ को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया और बनू-हाशिम को अपनी शरण में शिअबे-अबी-तालिब से बाहर लाए।

कुछ दिनों के बाद अबू-तालिब और उम्मुल-मोमिनीन हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) दोनो इस दुनिया से सिधार गए। वे दोनों कठिनाइयों के समय पैग़म्बर (सल्ल॰) का साथ दिया करते थे। अबू-तालिब के बाद इस परिवार की सरदारी उनके छोटे भाई अबू-लहब के हिस्से में आई। अबू-लहब की दुश्मनी खुली हुई थी और इसी प्रकार क़ुरैश के अत्याचार भी पहले के मुक़ाबले में काफ़ी बढ़ गए। पैग़म्बर (सल्ल॰) जब भी बाहर निकलते, लोग उनकी खिल्ली उड़ाते और जुमले कसते।

एक बार एक गुंडे ने पैग़म्बर (सल्ल॰) के सिर पर मिट्टी तक डाली।

जब पैग़म्बर (सल्ल॰) ने महसूस किया कि मक्का के क़ुरैश अपने द्वेष तथा शत्रुता का प्रदर्शन करने में कमी नहीं करेंगे, तो इस आशा पर कि शायद ताइफ़ का कोई व्यक्ति आप (सल्ल॰) की बात स्वीकार कर ले, आप (सल्ल॰) ताइफ़ रवाना हुए।

ताइफ़ बनू-सक़ीफ़ की मिल्कियत में था। इधर के लोग धनीमानी व्यक्ति थे, मुख्य रूप से अम्र-बिन-उमैर के तीन लड़के (अब्द, मसूद, हबीब) बहुत ही ज़्यादा प्रभाववाले थे। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उनके पास जाकर इस्लाम का सन्देश प्रस्तुत किया, लेकिन उन्होंने भी पैग़म्बर (सल्ल॰) के आह्वान को रद्द कर दिया। जब पैग़म्बर (सल्ल॰) निराश होकर वहाँ से लौटे, तो उन्होंने गुंडों और दासों को पैग़म्बर (सल्ल॰) के विरुद्ध भड़काकर रवाना किया। पहले उन्होंने ताली बजाकर, उपहास करके, गाली देकर पैग़म्बर (सल्ल॰) का अपमान किया और बाद में पत्थर बरसाए, जिससे आप (सल्ल॰) के पैरों में चोटें आईं, ख़ून बहने लगा। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बड़ी कठिनाई से इन लोगों से नजात हासिल की और एक मक्की व्यक्ति के बाग़ में शरण ली।

मक्का और ताइफ़ उपेक्षतः बड़े नगर थे। पूरे देश का व्यापार इन दो नगरों के व्यक्तियों के हाथ में था। वलीद-बिन-मुग़ीरा का एक कथन क़ुरआन ने इस प्रकार नक़ल किया है–

"यह क़ुरआन दो शहरों के किसी बड़े आदमी पर क्यों न उतरा?"
(क़ुरआन, सूरा-43 ज़ुख़रुफ़, आयत-31)

इस आयत के शब्द "दो शहर" से तात्पर्य मक्का और ताइफ़ हैं। इन दो शहरों के लोग किसी तरह इस्लाम स्वीकार कर लोक-परलोक का कल्याण प्राप्त करने की कामना पर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने दस-ग्यारह वर्ष तक निरन्तर यत्न किया, लेकिन उनमें से थोड़ी-सी संख्या के अतिरिक्त तमाम लोगों ने पारिवारिक पक्षपात, शक्ति, मान-सम्मान पर गर्व करने के कारण पैग़म्बर (सल्ल॰) के आह्वान को रद्द कर दिया। पैग़म्बर (सल्ल॰) और आप (सल्ल॰) के साथियों को हर प्रकार के अत्याचार का निशाना बनाया और

पैग़म्बर (सल्ल॰) का आह्वान स्वीकार करनेवाले स्वदेश छोड़कर जाने पर विवश हुए।

इसके बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अपने आह्वान के लिए दूसरे क़बीलों से भेंट की। वर्ष के विभिन्न भागों में हज तथा अन्य कार्यक्रमों के लिए मक्का आनेवाले क़बीलों के कैम्प में जाकर इस्लाम का सन्देश पहुँचाना पैग़म्बर (सल्ल॰) की आदत सी बन गई, लेकिन पैग़म्बर (सल्ल॰) जहाँ से भी गुज़रते चचा अबू-लहब उनका पीछा करता था। जब पैग़म्बर (सल्ल॰) अपना सन्देश दे चुके होते, तो बोलता, यह लात और उज़्ज़ा की इबादत से तुम्हें अलग करना चाहता है, "यह एक नए धर्म के साथ आया है, तुम्हें ग़लत रास्ते की ओर बुलाता है, इसलिए इसकी बातों में न आना, याद रखना।"

(इब्ने-हिशाम, भाग-5, पृ॰ 65)

पूरे वर्ष पैग़म्बर (सल्ल॰) ने विभिन्न क़बीलों को इस्लाम स्वीकार करने पर तैयार करने की भरसक जिद्दो-जुहद जारी रखी और इसमें कुछ प्रगति भी हुई, लेकिन इस विषय में बहुत कम लोग़ों ने अपनी रुचि दिखाई।

कारण स्पष्ट था। मक्का अरब की रीढ़ की हैसियत रखता है। धन तथा सामूहिक शक्ति में मक्कावाले समूचे अरब में अग्रणी थे। दूसरे क्षेत्रों के लोग उनपर अपनी आजीविका का किसी हद तक आश्रय रखते थे। इसके अतिरिक्त काबा भी मक्का में स्थित है, जहाँ हर क़बीला हज के लिए हाज़िर होता था। हज के साथ व्यापार के अवसर भी प्राप्त होते थे। उनका जीवन बड़ी हद तक इसी पर आश्रित था। ऐसी स्थिति में मक्का के रहनेवाले सरदार जब पैग़म्बर (सल्ल॰) के आह्वान को ठुकरा चुके थे, तो दूसरे उसे कैसे स्वीकारते!

जब मक्का के 'बड़े' लोगों ने हर प्रकार से यह सिद्ध कर दिया कि वे किसी प्रकार सन्मार्ग स्वीकार करने पर तैयार नहीं हैं, तो पैग़म्बर (सल्ल॰) को ईश्वरीय आदेश मिला कि जो इसे स्वीकारने पर तैयार हैं, आप उन्हें ही अपना सन्देश पहुँचाएँ।

दसवें वर्ष के हज के अवसर पर पैग़म्बर (सल्ल॰) अपनी आदत के अनुसार विभिन्न क़बीलों के कैम्प में जाकर अपना सन्देश प्रस्तुत कर रहे थे

कि मदीना के क़बीले ख़ज़रज के कुछ व्यक्तियों से पैग़म्बर (सल्ल॰) की भेंट हुई। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उन्हें इस्लाम का सन्देश पहुँचाया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। दूसरे वर्ष 12 और व्यक्तियों ने आकर इस्लाम स्वीकार कर लिया। तीसरे वर्ष 73 व्यक्तियों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार क्रमागत मदीना में मुसलमानों की संख्या अच्छी भली हो गई। फिर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मक्का के मुसलमानों को मदीना हिजरत करने की अनुमति दे दी। इस प्रकार वे एक-एक, दो-दो करके मदीना पहुँच गए। बहुत ही कमज़ोर और दूसरों के पराधीन व्यक्ति ही मक्का में रह गए। इसके अतिरिक्त पैग़म्बर (सल्ल॰) के साथ अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) और अली (रज़ि॰) ही रह गए थे।

शत्रुओं की आँखें खुल गईं। मुसलमान इस तरह सब-के-सब मदीना पहुँच गए, तो मुहम्मद (सल्ल॰) भी एक दिन वहाँ के लिए चल पड़ेंगे, इसका इन्हें अनुमान था। इस घटना से आनेवाली परिस्थितियों का अनुमान लगाने में उन्हें देर नहीं लगी। वे समझ गए कि मुहम्मद (सल्ल॰) के मदीना पहुँचने का अर्थ यह है कि मक्का और मदीना में लड़ाई का सिलसिला शुरू होना।

इस समस्या के हल की खोज निकालने के लिए वे 'दारुन्नदवा' में एकत्र हुए। एक व्यक्ति ने मशवरा दिया कि मुहम्मद (सल्ल॰) के हाथ-पैर बाँधकर उन्हें कोठरी में बन्द कर दिया जाए और खाने-पीने की चीज़ें न दी जाएँ।

इस विचार के खंडन में दूसरे लोग यूँ कह उठे—

"मुहम्मद जब तक जीवित रहेगा, हमें शान्ति न मिलेगी। उसे प्राप्त करने के लिए उसके माननेवाले हमसे युद्ध करेंगे, उसे स्वतन्त्र किए बिना वे चैन से नहीं बैठेंगे।"

दूसरे व्यक्ति ने विचार रखा कि इसे देश से बाहर निकाल दो। वह जहाँ चाहे चला जाए, उससे हमें क्या लेना-देना! हमें मुक्ति तो मिलेगी! इस विचार का दूसरे ने इस प्रकार खंडन किया, "यह तो बहुत बड़ी मूर्खता होगी। मुहम्मद की वाणी का जादू आप सभी जानते हैं, जिस तक भी यह पहुँचेगी, वही इसमें आकर्षण का अनुभव करेगा। ख़ुदा की क़सम! अगर हम इसे

वतन से बाहर निकालेंगे तो वह हमारे विरुद्ध पूरे देश में नया वातावरण पैदा कर देगा। अपनी जादू भरी वाणी से सबको फँसाकर हमपर आक्रमण करेगा और उसकी दासता स्वीकार करने पर हम मजबूर होंगे। फिर हम से जिस प्रकार चाहेगा, व्यवहार करेगा।''

अबू-जह्ल ने कहा कि मेरे विचार से एक और तरीक़ा अपनाया जा सकता है। जब सबने उसका विचार सुनने की उत्सुकता दिखाई तो उसने यूँ कहा, ''हम हर क़बीले में से एक साहसी युवक लें और उसके हाथ में तलवार थमा दें और ये सब मिलकर मुहम्मद का क़िस्सा ही तमाम कर दें। इस तरह हमें मुहम्मद से मुक्ति मिल जाएगी और उसे क़त्ल करने की ज़िम्मेदारी हर एक क़बीले पर होगी और हर क़बीले से लड़ने का साहस बनू-अब्दे-मनाफ़ में नहीं है। फिर अगर वे किसी मुआवज़े के लिए तैयार होते हैं तो हम उनसे बात करेंगे।''

यह निर्णय सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया और सब वापस हुए।
(इब्ने-हिशाम, भाग-2, पृ॰ 125, 126)

दूसरी ओर दया-मूर्ति पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की हिजरत की तैयारी पूरी हो चुकी थी, पैग़म्बर (सल्ल॰) दुश्मन की आँखों में धूल झोंककर उसी रात अबू-बक्र (रज़ि॰) के साथ शहर से रवाना हुए। जब उन्हें दूसरी सुबह एहसास हुआ कि मुहम्मद (सल्ल॰) बचकर निकल गए हैं, तो उन्होंने चारों ओर तलाशी ली, लेकिन 'जाको राखे साइयाँ, मारि सके न कोय' उनकी आँखों पर परदा पड़ गया, सही रास्ते से जाकर भी वे मुहम्मद (सल्ल॰) को गिरफ़्तार न कर सके। आख़िर उन्होंने मुहम्मद (सल्ल॰) को पकड़नेवाले के लिए सौ ऊँटों का पुरस्कार निश्चित किया, पर वह भी बेकार ही रहा। खुदा ने मुहम्मद (सल्ल॰) की सुरक्षा की। आप (सल्ल॰) दुश्मन से बचकर अपने साथियों तक जा पहुँचे।

यह समझा जा सकता था कि अब मुशरिक ख़ामोश हो जाएँगे, इसलिए कि अधिकांश मुसलमानों को वे देश-निकाला दे चुके थे और जो बचे थे, वे कमज़ोर थे, लेकिन क़ुरैश शान्त न रहे। मदीना में मुसलमानों को कष्ट

पहुँचाने की उन्होंने भरपूर कोशिशें कीं। पहले उन्होंने ख़ज़रज क़बीले के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई को पत्र लिखा, जिसमें लगभग यह बात लिखी थी–

"हमारे देश से भागकर जानेवालों को तुमने शरण दी है, या तो उन लोगों में सब-के-सब को क़त्ल कर दो या उन्हें मदीना से बाहर कर दिया जाए, वरना ख़ुदा की क़सम! हम मदीना पर हमला करके उसे तबाह कर देंगे मर्दों को क़त्ल और औरतों को सेविका बनाएँगे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इसके बाद उन्होंने मुसलमानों को एक वक़्त में हलाक करने के लिए निरन्तर तीन युद्ध किए। पहला युद्ध बद्र में हुआ। यह स्थान मक्का से दो सौ से अधिक और मदीना से साठ मील की दूरी पर स्थित है। बद्र के दो वर्ष बाद उहुद में युद्ध हुआ। यह स्थान मदीना के दक्षिण में दो ढाई कोस दूर था। तीसरा युद्ध मदीना की दीवारों से लगकर किया गया। मुसलमान शहर में घेर लिए गए। उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए शहर के दक्षिणी भाग में ख़न्दक़ खोदी।

हर युद्ध में मुशरिक क़ौम पहले से अधिक बढ़ती रही।

यहाँ युद्ध स्थलों की दूरी तथा भौगोलिक विवरणों को मुख्य रूप से इसलिए दिया गया है कि पश्चिमी लेखक दावा करते हैं कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला है। अगर यह सत्य होता तो ये युद्ध मदीना के निकट होने के बजाय मक्का के क़रीब होते। इन तीनों युद्धों में मुशरिकों ने आक्रमण किया और मुसलमान अपनी प्रतिरक्षा में युद्ध करते रहे। पर हर बार मक्कावाले असफल लौटे। मुसलमानों की तादाद दिन-प्रतिदिन बढ़ती रही और मुशरिकों की शक्ति हर दिन कम होती गई। अन्ततः हिजरत के आठ वर्ष बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने दस हज़ार साथियों के साथ मक्का जीत लिया।

यह मामला बहुत तेज़ी और बहुत रहस्य के साथ पूरा कर लिया गया। इस्लामी सेना के मक्का के क़रीब पहुँचने तक इस सिलसिले की कोई सूचना मुशरिकों को न मिल सकी। पैग़म्बर (सल्ल॰) का मुक़ाबला करने के लिए वे कदापि तैयार न थे। अतएव बिना मुक़ाबले हथियार डाल देने के अतिरिक्त

और कोई रास्ता न था।

विजय का दिन गत तमाम मामलों के प्रतिरोध का दिन हो सकता था। मैंने इन घटनाओं को सविस्तार इसलिए बयान किया है कि पाठकों का ज़ेह्न इस सत्य की ओर जा सके कि जब शक्ति क़ुरैश के हाथ में थी तो उन्होंने पूरे तौर पर मुसलमानों पर अत्यांचार किए, हर प्रकार से उन्हें सताया गया, देश छोड़कर भागनेवालों का पीछा तक किया गया, अपनी तमाम सेनाओं के साथ मदीना पर कई आक्रमण किए। मुसलमानों के एक अल्लाह पर ईमान लाने तथा बुतों की पूजा छोड़ देने की दुश्मनी में उन्होंने ये सब कारनामे अंजाम दिए। लेकिन पैग़म्बर (सल्ल॰) बदला लेने के लिए नहीं, बल्कि अल्लाह की रहमत का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए थे। पैग़म्बर (सल्ल॰) जब मक्का में प्रविष्ट हुए तो मक्कावासियों को आप (सल्ल॰) ने सूचित किया कि जो लोग बिना मुक़ाबले हथियार रख दें या अबू-सुफ़ियान के घर या हरम में पनाह ले लें या अपने घर के द्वार बन्द करके बैठे रहें तो उनको कोई कष्ट न दिया जाएगा। (इब्ने-हिशाम भाग-4, पृ॰ 46)

अन्ततः पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने क़ुरैश से पूछा, "तुम्हें मालूम है कि मैं तुमसे क्या मामला करूँगा।" एक ने उत्तर दिया, "भलाई का, इसलिए कि तुम भले भाई के भले बेटे हो।"

यह सुनकर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने यह उत्तर दिया—

"आज तुमसे कोई बदला नहीं, जाओ तुम सब आज़ाद हो।"

लेकिन पैग़म्बर (सल्ल॰) ने केवल इसपर बस नहीं किया। मक्का की जीत के साथ ही हुनैन की लड़ाई हुई, जिसमें प्रसिद्ध क़बीला हवाज़िन हार गया। पराजित सेना ने ताइफ़ में शरण ली। मुसलमानों ने वहाँ तक उनका पीछा किया और घेर लिया। सक़ीफ़ क़बीले का केन्द्र ताइफ़ था। बारह वर्ष पहले वहाँ के लोगों ने पैग़म्बर (सल्ल॰) पर पत्थर बरसाकर आप (सल्ल॰) को लहूलुहान कर दिया था। लड़ाई के लम्बे खींचने का अनुमानकर आप (सल्ल॰) ने मुसलमानों को वापस होने का हुक्म दिया और उनके सन्मार्ग के लिए अल्लाह से दुआ की।

इसके बाद लड़ाई से प्राप्त माल पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बाँट दिया। कल तक जो क़ुरैश पैग़म्बर (सल्ल॰) के घोर शत्रु थे, उनको माल का अधिक भाग मिला। एक-एक मालदार को सौ से अधिक ऊँट आप (सल्ल॰) ने दिए। अबू-सुफ़ियान को सौ ऊँट, उनके बेटे मुआविया को सौ ऊँट, हकम-बिन-हिशाम को सौ ऊँट, इसी प्रकार मक्का के बहुत से व्यक्तियों को सौ-सौ ऊँट दिए। उनसे कम श्रेणी के लोगों को पचास-पचास ऊँट मिले। इससे पैग़म्बर (सल्ल॰) का उद्देश्य दिल रखना था। उनके इस भ्रम को दूर करना था कि वे एक समय तक मुसलमानों के शत्रु रहे हैं और अन्तिम समय में इस्लाम लाए हैं, अतएव आरम्भ से इस समय तक मुसलमान होनेवाले व्यक्तियों से उन्हें कम दर्जा और कम भाग मिलेगा।

क्या उदारता, क्षमा, भाईचारा, सहानुभूति आदि का इतना उच्च उदाहरण मानव-इतिहास में किसी नेता ने प्रस्तुत किया है? इस्लाम और मुसलमानों को कष्ट न पहुँचानेवाला एक व्यक्ति भी मक्का में न था। ग़रीब मुसलमानों को मार-मारकर घायल कर दिया गया था। मुस्लिम होनेवाले दासों पर किए गए अत्याचारों के विचार से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अत्याचार से परेशान होकर हबशा गए हुए व्यक्तियों का वहाँ भी पीछा किया गया था, किस-किस प्रकार उन्हें मक्का वापस लाने की कोशिश न की गई थी। शेष व्यक्ति जब मदीना चले गए तो वहाँ भी उनसे कई युद्ध किए गए थे। तमाम लोगों को मुसलमानों के विरुद्ध वरग़लाकर एकत्र किया गया था। अल्लाह ने इस्लाम को सफल बनाया। विरोधियों का यत्न विफल हुआ। अल्लाह ने अपने पैग़म्बर के हाथ में अपने विरोधियों के जान व माल दे दिए तो अल्लाह के पैग़म्बर ने न केवल यह कि बदला नहीं लिया, बल्कि उनसे उनके करतूत का उल्लेख तक न किया और उनको सूचित किया कि तुमसे कोई शिकायत नहीं, तुम सब आज़ाद हो।

बल्कि कल तक जो आप (सल्ल॰) के घोरतम शत्रु थे, उनके घरों को युद्ध में मिले माल से मालामाल कर रहे हैं।

यह है दया-मूर्ति पैग़म्बर मुहम्मद का रवैया अपने मुशरिक शत्रुओं के साथ।

यहूदी

मक्का में यहूदी कदापि समस्या नहीं बन सकते थे और न इसका अवसर था, इसलिए कि यहूदी नाममात्र रहते थे। वहाँ अधिक संख्या तो अरब के मुशरिकों की ही थी, अतएव मक्का में केवल उनसे ही मामला रहा, मदीना में यहूदी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे, इसलिए पैग़म्बर (सल्ल॰) को मदीना जाते ही यहूदियों से मुक़ाबला करना सहज-स्वाभाविक था। यहूदी क्यों पैग़म्बर (सल्ल॰) पर ईमान लाएँ? यह प्रथम प्रश्न है, जिसपर हमें विचार करना चाहिए।

क़ुरआन में जहाँ हूद (अलैहिस्सलाम) को उनकी क़ौम में भेजे जाने का उल्लेख है, वहाँ उनकी अपनी क़ौम से प्रश्नोत्तर का भी उल्लेख किया गया है। उनकी क़ौम किसी प्रकार अपने पैग़म्बर पर ईमान न ला सकी तो उन्हें हलाक करने का उल्लेख है और बाद में कहा गया—

> "वे आद ही थे जिन्होंने अपने पालनहार रब की निशानियों का इनकार किया, उसके पैग़म्बरों की अवज्ञा की, और हर सरकश विरोधी के पीछे चलते रहे।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-59)

यह आयत जब भी मेरी नज़र से गुज़रती तो मैं ताज्जुब करता था कि आद ने तो एक पैग़म्बर का इनकार किया है, लेकिन उनपर तमाम पैग़म्बरों के इनकार का आरोप कैसे लगाया गया? पहले गुज़रे हुए तमाम पैग़म्बरों पर उनके विरोधियों ने जो अत्याचार किए, उसका रहस्य इसी में निहित है। इस प्रश्न का एक उत्तर मेरे मन में अंकित हो गया है, याद नहीं कि किसी आलिम की पुस्तक में देखा था या स्वतः यह बात समझ में आई। वह निम्न है—

आपने देखा होगा कि प्रकृति ने विभिन्न वस्तुओं के विभाजन किए हैं। अब तो दैनिक उपयोग के पदार्थ भी इसी ढंग से पैदा किए जाते हैं। हम जो 'ट्रेड मार्क' कहते हैं, वह भी वास्तव में इसी विभाजन का एक प्रदर्शन है। इसका उद्देश्य एक जाति को दूसरी जाति से गुणों की दृष्टि से अलग करना है। रचित जीवों में से हर एक की आदत, गुण, जन्म-उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। किसी एक प्रकार की चीज़ का गहराई के साथ अध्ययन करनेवाले व्यक्ति के लिए, इस जाति का दूसरे प्रकारों से अलग करना बहुत

आसान होगा।

पर विहंगम दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति इसके गुणों को न जानने के कारण इसे दूसरे प्रकारों से अलग नहीं करते। लेकिन यदि एक प्रकार की वस्तुओं पर गहरी नज़र रखनेवाला व्यक्ति भी उसे दूसरों से अलग न कर सके अर्थात् वह उस वस्तु और दूसरे प्रकार की वस्तुओं में अन्तर न कर पा रहा है, तो इसका अर्थ यह है कि वह इस सम्बन्ध में अज्ञानी है और अपने दावे के मुताबिक़ उसने विषय का गहराई तथा गंभीरता से अध्ययन नहीं किया है।

हर काल में पैग़म्बरों का विरोध करनेवाले व्यक्तियों के साथ भी यही मामला पेश आया। किसी भी पैग़म्बर पर सोच-समझकर ईमान लानेवाले व्यक्ति अपने पास आनेवाले दूसरे पैग़म्बर का इनकार न कर सकेंगे। यदि कोई व्यक्ति एक पैग़म्बर पर ईमान लाकर दूसरे पैग़म्बर का इनकार करता है तो इसका अर्थ यह है कि यह व्यक्ति 'किसी विशेष प्रकार की एक वस्तु पर गहरी नज़र रखनेवाले व्यक्ति' जैसा है, जिसे इस विशेष प्रकार की एक वस्तु को पहचान लेना कठिन हो रहा है। अर्थ यह हुआ कि जिस प्रकार यह विशेष प्रकार की वस्तु का अध्ययन करनेवाला इस प्रकार के गुणों को नहीं जानता, जैसे ही एक पैग़म्बर पर ईमान लानेवाले व्यक्ति को पैग़म्बरों के गुणों का ज्ञान नहीं है। इसी कारण वह व्यक्ति पैग़म्बर का इनकार करने लगता है, अतएव एक पैग़म्बर के इनकार का अर्थ यह हुआ कि सभी पैग़म्बरों के आने का उसने इनकार किया।

इसी कारण आद क़ौम ने हूद (अलैहि॰) का इनकार किया तो उसे क़ुरआन ने तमाम पैग़म्बरों का इनकार बताया, इसलिए कि उनको ज्ञात है कि पैग़म्बरी की वास्तविकता क्या है? पैग़म्बर की विशेषताएँ क्या हैं? सामान्य व्यक्ति से पैग़म्बर को क्या बात अलग करती है?

देखिए, यहूदियों में कितने-कितने पैग़म्बर आए। क़ुरआन में अल्लाह कहता है—

"हमने एक के बाद एक पैग़म्बर भेजे।"

(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-44)

पर जब उस क़ौम में हज़रत ईसा (अलैहि०) आए, तो उनका अधिसंख्य उन्हें पहचान न सका। उनपर ईमान लाने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त न हुआ, इसलिए कि हज़रत मूसा (अलैहि०) और उनके बाद लगातार आनेवाले पैग़म्बरों पर ईमान केवल एक आदत की हैसियत रखता है, जो पुरखों के अन्धानुकरण का परिणाम था। इसी लिए कुछ समय बाद आनेवाले पैग़म्बर को वे पहचान न सके। इससे मालूम होता है कि वे जिन-जिन पैग़म्बरों पर ईमान रखने का दावा करते हैं, वहीं पैग़म्बर जब खुद तशरीफ़ लाते, तब भी ये पहचान न सकते थे, बल्कि उनको झुठला देते।

जी हाँ, जब यहूदियों ने एक पैग़म्बर ईसा (अलैहि०) का इनकार किया, तो वास्तव में उन्होंने तमाम पैग़म्बरों को झुठलाया।

मुहम्मद (सल्ल०) को भी यही अनुभव प्राप्त हुआ। यह सच है कि मुहम्मद (सल्ल०) के युग के यहूदी एक पैग़म्बर के आने का बेसब्री से इन्तिज़ार कर रहे थे। उनकी निशानियाँ भी प्रबल हो गई थीं। यहूदियों के धर्म-ग्रन्थों तथा कथनों के बयान से आनेवाले पैग़म्बर का इन्तिज़ार तेज़ी से हो रहा था। लेकिन आनेवाला आया और जब उसने अपने पर ईमान लाने की माँग की तो उन्होंने इनकार कर दिया।

हज़रत दाऊद, सुलैमान, इबराहीम, इसहाक़, याक़ूब, इसमाईल, इलयास, ज़करिया और यह्या (अलैहि०) आदि का बार-बार उल्लेख करने से क़ुरआन का उद्देश्य यह है कि जब तुम इन पैग़म्बरों को सच समझते हो, तो उसी कसौटी पर मुहम्मद (सल्ल०) को रखकर परखो, इसलिए कि पिछले पैग़म्बरों की जो हालत थी, ठीक वही हालत मुहम्मद (सल्ल०) की है।

मक्का के मुशरिकों की फिर भी विवशता थी कि उनमें पैग़म्बरी की कोई विशेष कल्पना न थी। पैग़म्बर किसे कहते हैं? इसके गुण क्या हैं? आदि वे बिलकुल न जानते थे। अतएव पैग़म्बर (सल्ल०) पर ईमान न लाने के लिए उनकी यह विवशता हो सकती थी, लेकिन यहूदियों के लिए ऐसा करना भी सम्भव न था। मूसा के बाद उनमें बराबर पैग़म्बर आते रहे। जिस क़ौम में इतने पैग़म्बर लगातार आए हों, उसके लिए यह कहकर बच निकलना कैसे सम्भव होगा कि पैग़म्बर के गुणों को हम नहीं जानते। इसके बावजूद अगर

वे मुहम्मद (सल्ल॰) को पैग़म्बर मानने से इनकार करते हैं, तो इससे स्पष्ट होता है कि भूतपूर्व पैग़म्बरों पर भी उनका ईमान सच्चा न था। भूतपूर्व पैग़म्बरों पर उनका ईमान सच्चाई की खोज पर आधारित न था, बल्कि पुरखों के अन्धानुकरण का फल था। सच्चे पैग़म्बर की निशानियों को न जानने के कारण जब उनके पास पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) आए तो ईमान का सौभाग्य प्राप्त न हुआ, पर हम देख सकते हैं कि उन्होंने शुरू ही में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) का विरोध नहीं किया।

मदीना में यहूदियों के तीन क़बीले रहते थे—बनू-क़ैनुक़ाअ, बनू-नज़ीर, बनू-क़ुरैज़ा। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ शाखाएँ भी मौजूद थीं। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मदीना में आते ही राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए एक समझौता तैयार किया जिसे 'मदीना राज्य का भौतिक संविधान' नाम दिया जा सकता है, जिसमें मुहाजिर, अनसार और यहूदी क़बीलों के अधिकार तथा कर्तव्य उनकी इजाज़त और अनुमति से सविस्तार लिखे गए थे। ऐसा इसलिए किया गया कि बाद में किसी प्रकार का भ्रम न पैदा हो सके।

इस समझौते की धाराएँ पर्याप्त हैं, जिसमें वार्ता से सम्बन्धित धाराओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

1. यहूदी मुसलमानों के साथ एक राज्य के नागरिक के रूप में रहेंगे। यहूदी अपने और मुसलमान अपने धर्मानुसार जीवन बिताने के अधिकारी हैं। कोई अगर ज़ुल्म करे या समझौते का विरोध करे तो उसकी ज़िम्मेदारी केवल उसपर और उसके परिवार पर होगी।

2. जब तक दोनों मिलकर युद्ध करेंगे। मुसलमानों की तरह यहूदी भी ख़र्चे का बोझ उठाएँगे।

3. इनमें से कोई भी मुहम्मद (सल्ल॰) की अनुमति के बिना युद्ध के लिए नहीं जाएँगे।

4. यहूदी अपना ख़र्च और मुसलमान अपना ख़र्च वहन करेंगे।

5. इस समझौते में यह भी था कि यदि किसी के विरुद्ध कोई लड़ाई हो, तो मुसलमान और यहूदी एक-दूसरे का साथ देंगे और इस सम्बन्ध में फ़ैसला

करने के लिए एक-दूसरे से मशवरा करेंगे और सहानुभूति दिखाएँगे तथा समझौते की पाबन्दी करेंगे, उसका विरोध नहीं।

6. इस समझौते में सम्मिलित व्यक्ति की आपस में कोई हत्या या झगड़ा हो जाए, जिससे दोनों फ़रीक़ों में झगड़ा या सन्देह पैदा होने की आशंका होने लगे, तो अल्लाह के क़ानून और पैग़म्बर के निर्णय के अनुसार हल किया जाएगा।

7. क़ुरैश या उनकी सहायता करनेवालों को किसी प्रकार का आश्रय न दिया जाएगा।

8. मदीना पर आक्रमण हुआ तो यहूदी और मुसलमान एक दूसरे की सहायता करेंगे।

समझौते की उपरोक्त शर्तों की रौशनी में निम्न बातें मालूम हुईं—

(अ) मुसलमानों की तरह यहूदियों ने भी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) को अपनी राजनीतिक समस्याओं का निर्णायक मान लिया था। झगड़ों आदि में पैग़म्बर (सल्ल॰) के निर्णयों की कठोरता से पाबन्दी को स्वीकार कर लिया था।

(आ) यहूदी अपने धर्मिक मामलों में ही पूरी तरह स्वतन्त्र थे, लेकिन मुसलमानों के शत्रुओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता पहुँचाने के अधिकारी वे न थे।

(इ) मदीना पर आक्रमण होने की स्थिति में देश की सुरक्षा के लिए मुसलमानों से मशवरा करना और कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़ना, यहूदियों का कर्तव्य था। यहूदियों का सैनिक ख़र्च वे स्वयं सहन करेंगे। जब तक लड़ाई चलती रहेगी, अपने सामरिक व्यय उन्हें स्वयं सहन करने होंगे।

(इब्ने-हिशाम, भाग-2, पृ॰ 142-150)

स्पष्ट है कि यह समझौता यहूदियों की पूर्ण सहमति तथा अनुमति के बिना लागू नहीं हो सकता था। इससे जान पड़ता है कि न केवल यह कि वे मुसलमानों का विरोध नहीं करेंगे, बल्कि मुसलमानों से मिलकर एक राष्ट्र भी बनाने के लिए तैयार थे। पर शीर्घ ही उनका दृष्टिकोण बदल गया और नाना प्रकार के संघर्ष छेड़ने तथा षड्यन्त्र रचने की शुरुआत उन्होंने कर दी।

यहूदियों के विरोध के कारण

यहूदी शिक्षा, मान-सम्मान, सत्ता, धन, तथा संगठन की दृष्टि से मदीना के अरबों से कहीं अधिक आगे थे। मदीना के क़बीले औस और ख़ज़रज को आपस में लड़ाकर 'फूट डालो, राज्य करो' की नीति पर अमल कर रहे थे। मजबूरी के वक़्त अरब उनसे ऋण लेते थे, इससे भी उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी।

इन्हीं परिस्थितियों में मक्का के ग़रीब निर्धन मुसलमान मदीना हिजरत कर गए। यहूदियों ने इस बात को कुछ अधिक महत्व न दिया। उनका विचार था कि मुसलमानों की हिजरत से उनकी 'प्रजा' की संख्या बढ़ी है। इसलिए कि वे जानते थे कि ग़रीब मुसलमान किसी रूप में इन यहूदियों पर आक्रमण न कर सकेंगे। इसके बाद जब पैग़म्बर (सल्ल॰) मदीना तशरीफ़ लाए, तो पैग़म्बर (सल्ल॰) के प्रभाव को भी अपने पक्ष में इस्तेमाल करने के लिए उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल॰) से मिल-जुलकर रहना शुरू किया, लेकिन जल्द ही उनको मालूम हो गया कि उन्होंने शक्ति से अधिक का भार उठा लिया है, उनके जाल में फँसने के लिए पैग़म्बर (सल्ल॰) या तमाम मुसलमान तैयार न थे। यहाँ से विरोध का आरम्भ होता है।

1. **बनू-क़ैनुक़ाअ :** मदीना के बीच 'मुसल्ला' नामी जगह के क़रीब बनू-क़ैनुक़ाअ रहते थे। उनके दो छोटे क़िले थे। आजीविका की दृष्टि से ये न जागीरदार थे और न ही पूँजीपति, ये मात्र श्रमिक थे। सुनार का काम वे आम तौर पर करते थे। उन्होंने अपना एक मार्केट भी बना लिया था। देश का कारोबार धीरे-धीरे उनके चंगुल में आता गया। तीन यहूदी क़बीलों में ये अपेक्षतः शक्तिवान तथा मान-सम्मानवाले थे, अपनी शक्ति तथा धन पर उन्हें गर्व था, शायद इसी भाव ने उन्हें सबसे पहले समझौते को भंग करने पर उतारू कर दिया।

बद्र की लड़ाई के बाद सन् 636 ई॰ में एक बार पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने उनसे बातचीत की, तो उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल॰) से बड़ी अशिष्टता का व्यवहार किया। इस सम्बन्ध में पैग़म्बर (सल्ल॰) ने चेतावनी दी कि "ख़ुदा से डरो। बद्र में क़ुरैश पर जो कुछ हुआ, उस तरह का अल्लाह का प्रकोप

आने से डरो। मैं तुमसे केवल भलाई चाहता हूँ, तुमको तो अच्छी तरह मालूम है कि मैं वही पैग़म्बर हूँ जिसका तुम्हारी किताबों में उल्लेख हुआ है और इस्लाम स्वीकार करो। मेरा पालन करने का आदेश अल्लाह तुमको दे रहा है।"

पैग़म्बर (सल्ल०) की इस सीख का उत्तर उन्होंने तीखे स्वर में दिया कि तुम्हारे बराबर के मुक़ाबले के लोग हम हैं, किसी ऐसी क़ौम से, जिसे सामरिक दक्षता नहीं प्राप्त थी, बद्र में तुमने युद्ध जीत लिया, तो इससे तुम्हें भ्रम हो गया है, लेकिन ख़ुदा की क़सम! जब हमसे मुक़ाबला होगा, तो हम बता देंगे कि मर्द किसे कहते हैं। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ० 50)

यह गर्व तथा अभिमान कुछ दिनों तक उनके दिलों पर छाया रहा और निम्न घटना के समय खुलकर सामने आ गया।

एक दिन कुछ ख़रीदने के लिए एक मुसलमान औरत बनू-क़ैनुक़ाअ के बाज़ार में गई। एक सोने की दुकान से सामान ख़रीदकर लौटने में एक यहूदी सुनार की दुकान में चढ़ आई। यहूदी ने उस महिला से कहा कि अपना निक़ाब उठा दो। महिला ने इनकार कर दिया तो यहूदी ने चुपके से उसके वस्त्र का एक सिरा पीछे से बाँध दिया। इस प्रकार अचानक खड़े होने से उसका गुप्त स्थान खुल गया। यह देखकर यहूदी गुंडे ठहाका मारकर हँसने लगे और उसकी खिल्ली उड़ाने लगे। वह यह अपमान न सहन कर सकी और सहायता के लिए ज़ोर-ज़ोर से चीख़ना-चिल्लाना शुरू कर दिया। निकट ही खड़ा एक मुसलमान यह सुनकर क्रोध की आग में जलने लगा। वह दौड़ा आया और तत्काल यहूदी की हत्या कर दी। बाज़ार यहूदियों का था, वे हर ओर से एकत्र हो गए और उन्होंने मिलकर उस मुसलमान को मार-मारकर ख़त्म कर दिया।

कांड की सूचना मिलते ही मुसलमान भड़क उठे और वे युद्ध के लिए एक-दूसरे से सहायता माँगने लगे। अन्ततः युद्ध शुरू हो गया। पैग़म्बर (सल्ल०) ने पहले बनू-क़ैनुक़ाअ के क़िले को घेर लिया। पन्द्रह दिन तक चले घेराव में विवश होकर यहूदी समझौते पर तैयार हुए।

(इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ० 50)

सोचिए! ऐसी स्थिति में उनको कैसा कठोर दंड मिलना चाहिए था? उन्होंने जान-बूझकर फ़ितना पैदा किया था। समझौते के अनुसार, यहूदी और मुसलमान एक राष्ट्र थे, अतएव मुस्लिम महिला को अपमानित करने से उन्हें गुंडों को रोकना चाहिए था, अपने ही आदमी को ऐसा करने का कठोर दंड देना चाहिए था, खुले बाज़ार में एक शिष्ट महिला का उपहास करना और उसपर ठहाके लगाना एक अमानवीय कर्म था तथा यह उनका अभिमान था। भावनाओं में आकर अगर उस मुसलमान ने यहूदी की हत्या भी कर दी थी, तो उन्हें समझौते के अनुसार पैग़म्बर (सल्ल॰) के पास निर्णय के लिए हाज़िर होना चाहिए था, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, बल्कि वे सब मिलकर उस मुसलमान की हत्या कर देते हैं। इन तमाम बातों के बावजूद, जब यहूदी समझौते के लिए तैयार हुए तो पैग़म्बर (सल्ल॰) ने स्वीकार कर लिया। निश्चित बात है कि मुसलमानों ने उनके धन तथा अस्त्र पर क़ब्ज़ा किया होगा, पर उनमें से एक भी इनसानी जान नहीं ली गई।

(तबक़ात इब्ने-साद, 102-109)

ख़ज़रज क़बीले का सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई-बिन-सलूल मुसलमानों में से था। बनू-क़ैनुक़ाअ इस क़बीले के मित्र थे। जब अब्दुल्लाह-बिन-उबई को सूचना मिली कि बनू-क़ैनुक़ाअ उक्त युद्ध में हथियार डाल चुके हैं तो वह पैग़म्बर (सल्ल॰) के पास आया और कहा कि बनू-क़ैनुक़ाअ हमारे मित्र हैं, अतः उनसे नम्रता का व्यवहार किया जाए। इब्ने-हिशाम की रिवायत के अनुसार इस सिलसिले में अब्दुल्लाह का पैग़म्बर (सल्ल॰) के पास आगमन उस समय हुआ, जब पैग़म्बर (सल्ल॰) बनू-क़ैनुक़ाअ को उनके ज़ुल्म और समझौते को भंग करने की सज़ा देने का इरादा कर रहे थे और पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उसकी माँग स्वीकार करते हुए उन्हें छोड़ दिया और शायद यूँ फ़रमाया कि जाओ उस व्यक्ति के लिए हम तुम्हें छोड़ देते हैं। (इब्ने-हिशाम भाग-3, पृ॰ 53)

लेकिन सुनन अबू-दाऊद (किताबुल-ख़िराज) से मालूम होता है कि जब आज्ञापालन का विश्वास दिलाने पर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उन्हें और उनके ख़ानदान की जान व माल को शरण दे दी थी तो ऐसी स्थिति में दूसरी सज़ा

देना अविश्वसनीय है।

फिर 700 व्यक्तियों का यह क़बीला मदीना छोड़कर फ़लस्तीन चला गया। जाते वक़्त पैग़म्बर (सल्ल॰) ने सामरिक हथियारों के अलावा तमाम चीज़ें ले जाने की इजाज़त दे दी।

2. बनू-नज़ीर : बनू-नज़ीर मदीना से बाहर दक्षिण पूर्व में रहते थे। वे ज़मींदार और व्यापारी थे। क़ुरैश के साथ उनका स्थाई रूप से व्यापार रहता था। 'बिअरे-मऊना' कांड बनू-नज़ीर कांड का अन्तिम भाग है। इसी लिए उसका उल्लेख करना यहाँ ज़रूरी समझा जाता है।

सन् 4 हिजरी में बनू-आमिर क़बीले के एक व्यक्ति अबुल-बरा आमिर-बिन-मलिक-बिन-जाफ़र पैग़म्बर की सेवा में उपस्थित हुए। वे उस वक़्त मुसलमान न हुए थे। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने आदत के मुताबिक़ उन्हें इस्लाम का सन्देश पहुँचाया। उन्होंने न तो सन्देश स्वीकारा और न इनकार ही किया, बल्कि पैग़म्बर (सल्ल॰) से निवेदन किया कि कुछ व्यक्तियों को मेरे साथ इस्लाम के प्रचार व प्रसार के लिए भेजें, जो सर्वप्रथम मेरे क़बीले को इस्लामी शिक्षाओं से परिचित करें। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने जब फ़रमाया कि मुझे नज्दवालों पर कुछ अधिक भरोसा नहीं है, तो आमिर ने विश्वास दिलाया कि आप भेजिए, उनकी सुरक्षा मेरे ज़िम्मे है, इस्लाम का सन्देश मेरी जातिवालों तक भी पहुँचना चाहिए। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 52)

इस प्रकार मुन्ज़िर-बिन-अम्र (रज़ि॰) के नेतृत्व में पैग़म्बर (सल्ल॰) ने चालीस साथियों को रवाना किया, इनमें से अधिकांश 'अहले-सुफ़्फ़ा' थे, जो क़ुरआन कंठस्थ करनेवाले आलिम थे। सहाबा की यह जमाअत बनू-आमिर के इलाक़े बिअरे-मऊना में दाख़िल हुई। हराम-बिन-मिल्हान को पैग़म्बर (सल्ल॰) का पत्र लेकर क़बीले के सरदार आमिर-बिन-तुफ़ैल के पास रवाना किया गया। आमिर इस्लाम का कट्टर शत्रु था। इससे पहले उसने पैग़म्बर (सल्ल॰) से एक समझौता करने की कोशिश की थी कि मरुस्थलीय भाग की मिल्कियत पैग़म्बर (सल्ल॰) को दे दी जाती है, शहर की मिल्कियत मेरी (आमिर-बिन-तुफ़ैल) और मेरी मौत के बाद मेरे उत्तराधिकारी की रहेगी। इस विश्वास दिलाने पर मैं इस्लाम स्वीकार करने को तैयार हूँ। इस समझौते के

लिए तैयार न हुए तो बनू-ग़तफ़ान से मिलकर पैग़म्बर (सल्ल॰) से युद्ध करूँगा—ये थीं आमिर की शर्तें। (हदीस : बुख़ारी, किताबुल-मग़ाज़ी)

हराम-बिन-मिल्हान (रज़ि॰) आमिर-बिन-तुफ़ैल के पास पहुँचे और पैग़म्बर (सल्ल॰) का पत्र दिया। न केवल यह कि आमिर ने पत्र पढ़ने का कष्ट नहीं किया, बल्कि हराम (रज़ि॰) को बेदर्दी से क़त्ल कर दिया और इसके बाद निकट के तमाम क़बीलों को जमा करके इस्लाम के अनुयायियों का क़त्ल कर दिया। सिर्फ़ अम्र-बिन-उमय्या (रज़ि॰) को आमिर ने यह कहकर छोड़ दिया कि मेरी माँ ने एक ग़ुलाम आज़ाद करने की मन्नत मानी थी, मैं तुझको आज़ाद करता हूँ। वह मदीना वापस आ रहे थे कि रास्ते में बनू-आमिर के दो व्यक्तियों को देखा। अम्र के साथियों के साथ बनू-आमिर ने क्या कुछ किया था इससे उनका मन घायल था, अतएव उन्होंने अधिक कुछ विचार न किया। मौक़ा देखकर उन दोनों की हत्या कर दी। उन्हें मालूम नहीं था कि उन दोनों के पास पैग़म्बर (सल्ल॰) की अनुमति तथा पत्र मौजूद है। अम्र ने पैग़म्बर (सल्ल॰) के दरबार में पहुँचकर तमाम घटनाएँ सुनाईं।

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने यूँ फ़रमाया, "आपने इन निरपराध व्यक्तियों का ख़ून किया है, अब उनके परिवार को ख़ून बहा देना ही पड़ेगा।"

(इब्ने-हिशाम, भाग-2, पृ॰ 14-15)

बनू-आमिर और यहूदी क़बीला बनू-क़ैनुक़ाअ आपस में मित्र थे। दूसरी ओर पैग़म्बर (सल्ल॰) और बनू-नज़ीर के समझौते के अनुसार ख़ून बहा अदा करने में बराबर के शरीक क़रार पा रहे थे। ऐसी स्थिति में पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बनू-नज़ीर से ख़ून बहा में अपना हिस्सा अदा करने का वादा भी लिया। समझौते के होते हुए वे अदा करने से इनकार भी न कर सकते थे, लेकिन उन्होंने टाल-मटोल करना शुरू कर दिया। एक बार पैग़म्बर (सल्ल॰) कुछ साथियों के साथ बनू-नज़ीर के पास गए। उन्हें सूचित किया कि इस ख़ून बहा में जो राशि तुम्हें देनी है, उसके लिए आए हैं, लेकिन उन्होंने ख़ामोशी से पैग़म्बर (सल्ल॰) की हत्या का कार्यक्रम बनाना शुरू किया। कुछ यहूदियों ने कहा, यह मौक़ा सही है। इस छत पर से मुहम्मद के सिर पर पत्थर गिराकर क़त्ल करते हैं, तो हमें इनकी दुष्टताओं से (अल्लाह की पनाह) मुक्ति

मिलेगी। शत्रु के इस छल-कपट की सूचना पैग़म्बर (सल्ल॰) को हो गई। अपने साथियों से कुछ न कहा, इसलिए कि पैग़म्बर (सल्ल॰) को ख़तरा महसूस हो रहा था कि यहूदियों को अगर अपने भेद के खुल जाने का सन्देह होगा तो वे खुल्लम-खुल्ला लड़ाई पर उतारू हो सकते हैं, अतएव वहाँ से वे चुपके से निकल आए। स्थिति की जटिलता बताने की आवश्यकता नहीं, इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि आप (सल्ल॰) ने अपने साथियों को वहीं छोड़ा और स्वयं निकल आए। ऐसा पैग़म्बर (सल्ल॰) ने इसलिए किया कि शत्रु को मुसलमानों की उपस्थिति का एहसास रहे, वरना वे पीछा भी कर सकते हैं। अधिक समय न हुआ कि आप (सल्ल॰) के साथी भी वापस आ गए। (इब्ने-हिशाम, भाग-5, पृ॰ 199-200)

पर राष्ट्र-द्रोह के इस भयानक अपराध पर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कोई कार्रवाई नहीं की।

बनू-नज़ीर का औस क़बीले से समझौता था, अतएव औस क़बीले के मुहम्मद-बिन-मुस्लिम (रज़ि॰) को निम्न सन्देश देकर बनू-नज़ीर के पास भेजा कि दस दिनों के भीतर तुम्हारे क़बीले के तमाम व्यक्तियों को मदीना छोड़कर जाना होगा, अपने साथ तमाम चल सम्पत्ति ले जा सकते हो। हर साल अपने खजूर के बाग़ से फल निकालने की तुम्हें स्वतन्त्रता है।

यहूदियों को विश्वास हो गया कि हमें अपने मित्र क़बीले औस से कोई सहायता नहीं मिल सकेगी, अतएव वे इन शर्तों को मानने पर तैयार थे, लेकिन मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) के सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई-बिन-सलूल और उसके साथियों ने पूरा यत्न किया कि यहूदी मदीना छोड़कर न जाएँ और उनको प्रोत्साहित करते रहे कि धीरज से काम लो, तुम्हारे जाने का जब अवसर आएगा तो हम तुम्हारे साथ रहेंगे। हम तुमपर आँच न आने देंगे। अगर तुम युद्ध करोगे तो भी हम तुम्हारा साथ देंगे। (क़ुरआन, सूरा-59, हश्र आयत-11, इब्ने-हिशम, भाग-3, पृ॰ 200-201)

पैग़म्बर (सल्ल॰) की बताई हुई शर्तों पर समझौता करने के लिए बनू-नज़ीर के समझदार तथा साहसी व्यक्तियों ने विचार-विमर्श किया, लेकिन क़बीले का सरदार हुयई-बिन-अख़तब, साथी क़बीला बनू-क़ुरैज़ा से

सहायता मिलने की उम्मीद पर मुक़ाबले के लिए तैयार हो गया और इस प्रकार वे क़िले का द्वार बन्द करके भीतर इकट्ठा हो गए।

पर मुनाफ़िक़ और बनी-नज़ीर कुछ दिनों तक सहायता की आशा में पड़े रहे, लेकिन इस ओर से सिर्फ़ ख़ामोशी दीख पड़ी। अन्ततः उन्होंने हथियार डालने का निर्णय लिया और पैग़म्बर (सल्ल॰) को सूचित किया कि अगर प्राणों की सुरक्षा मिल जाए, तो हम मदीना छोड़कर जाने के लिए तैयार हैं। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने इस बात को स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त हर एक व्यक्ति को अपने ऊँट पर जितना सामान लाद सके, ले जाने की अनुमति दे दी।

देखिए उनके करतूत और उस महान व्यक्ति की दयाशीलता!

बनू-नज़ीर मदीना छोड़कर ख़ैबर चले गए, उनसे किए गए वादे पूरे किए गए, यहाँ तक कि वे अपने साथ घर के दरवाज़े तक उखाड़ कर ले गए, किसी ने उफ़ तक न किया। इस प्रकार वे 600 ऊँटों पर जितना सामान ज़बरदस्ती लाद सके, अपने साथ ले गए, बल्कि वे जुलूस निकालने के अन्दाज़ में रवाना हुए। दफ़, बाँसुरी, नृत्य, मानो इस तरह से निकले कि देखनेवाला कोई उन्हें कह नहीं सकता था कि उन्हें निकाल दिया गया है। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 201)

उस समय एक घटना घटित हुई, जो इस्लामी सहनशीलता की श्रेष्ठ मिसाल है। मदीना के मुशरिकों में एक रस्म थी कि यदि कोई व्यक्ति निसन्तान रहे या किसी विपत्ति में पड़ जाए, तो वह मनौती चढ़ाता था कि अगर बच्चा हुआ या विपत्ति टल गई तो अपने बच्चों को यहूदी धर्म में दाख़िल करेगा। इस रस्म के अनुसार वे माँ-बाप जिन्होंने इस मन्नत पर अमल किया था जब मुसलमान हो गए और उनकी सन्तानें यहूदियों के यहाँ पल-बढ़ रही थीं, उनके लिए एक समस्या पैदा हो गई। बनू-नज़ीर मदीना छोड़कर जाने लगे तो उन्होंने इन नए यहूदियों को अपने ही साथ ले जाने का निर्णय किया, लेकिन माँ-बाप इसमें बाधा बन गए। मामला पैग़म्बर (सल्ल॰) के सामने आया तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया धर्म के मामले में ज़बरदस्ती नहीं।

इस प्रकार पहले समझौते के अनुसार यहूदियों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली रही, जबकि वे अवसर मिलते ही समझौते को भंग कर दिया करते थे, पर मुसलमान एक बार भी समझौते के विरुद्ध कार्य करें, यह पैग़म्बर (सल्ल॰) को सहन नहीं हो सकता था।

/ इस प्रकार वे उन तमाम युवकों तथा बच्चों को लेकर रवाना हो गए।

(हदीस : अबू-दाऊद, किताबुल-जिहाद)

उस समय मदीना में संगठित यहूदी क़बीला एक ही रह गया था, बनू-क़ुरैज़ा। यह बनू-नज़ीर का क़रीबी रिश्तेदार था और उसकी दो शाखाएँ बनू-काब और बनू-अम्र थीं। 'मदीना' नगर के दक्षिण में ये लोग रहते थे, आजीविका खेती थी। पैदावार बेचने के कारण ये धनी तथा समृद्धिशाली थे। दूसरे क़बीलों की तरह ये लोग भी पैग़म्बर (सल्ल॰) से द्वेष तथा शत्रु-भाव का मामला रखते थे, लेकिन यह बात इतनी खुलेआम न होती थी। दूसरे दो क़बीलों के मदीना छोड़ने के बाद भी ऐसी नीति अपनाने लगे जो उनके लिए अति विनाशक थी, अतएव पहले से अधिक शिक्षाप्रद परिणामों का सामना करना पड़ा।

मदीना छोड़कर ख़ैबर जानेवाले बनू-नज़ीर क़बीलों के सरदारों में हुयई-बिन-अख़तब और सलाम-बिन-अबी-हुक़ैक़ और उनका भाँजा किनान-बिन-रबीअ की गिनती होती थी। उनकी धार्मिक हैसियत भी बहुत बढ़ी हुई थी। उपरोक्त सरदारों का ख़ैबरवालों ने सहर्ष स्वागत किया और उन्हें अपना सरदार मान लिया, लेकिन इन पदों से उनके दिल की आग न बुझ सकी। देश-परित्याग तथा अपमान का उन्हें बड़ा एहसास था, अतएव बैर तथा शत्रुता थी। मुसलमानों से बदला लेने के लिए उनके मन विकल थे। अतएव हुयई-बिन-अख़तब हर जगह मुसलमानों के विरुद्ध बैर-भाव फैलाने लगा। इन सबका परिणाम यह हुआ कि सन् 5 हिजरी में चारों ओर के तमाम अरब क़बीले मिलकर मदीना पर हमलावर हुए। इन शत्रुओं की संख्या विभिन्न कथनों के अनुसार दस हज़ार से बीस हज़ार तक थी। यदि हम कम-से-कम अर्थात् दस हज़ार ही मान लें, तब भी उनकी स्थिति की विकटता को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है, इसलिए कि उस समय

मुहाजिरों और अनसार की संख्या तीन हज़ार से अधिक बिलकुल न थी। इसी युद्ध को इतिहास में 'अहज़ाब' या 'ख़ंदक़' के नाम से याद किया जाता है। युद्ध का विवेचन इस लेख का अंश नहीं है। उम्मुल-मोमिनीन उम्मे-सलमा के शब्दों में, इससे अधिक चिन्ताजनक तथा चकित कर देनेवाली कोई विपदा नहीं जिसका मुक़ाबला पैग़म्बर (सल्ल॰) को करना पड़ा।

स्थिति की जटिलता का अनुमान इस कथन से किसी सीमा तक लगाया जा सकता है, पर अरब क़बीलों से अधिक कष्ट पैग़म्बर (सल्ल॰) को यहूदी क़बीलों से पहुँचा। क़ुरैशी सेना टिड्डयों की तरह हमलावर हुई, यूँ हुयई-बिन-अख़तब ने बनू-क़ुरैज़ा के क्षेत्र में जाकर उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध भड़काया। बनू-क़ुरैज़ा के सरदार काब-बिन-असद का साहस बढ़ाते हुए कहा कि इस हमलावर महान सेना से मिलकर मुसलमानों के नष्ट करने का जो सुअवसर हाथ आया है, फिर कभी न आएगा। काब ने पहले इनकार करते हुए गुस्सा दिखाया कि मुहम्मद की ओर से आज तक किसी प्रकार भी समझौते के ख़िलाफ़ कोई कार्य नहीं किया गया है, ऐसी स्थिति में हम किस प्रकार उसका विरोध कर सकेंगे? लेकिन हुयई ने काब को लालच दिलाया, "कौन-सा समझौता? कहाँ के मुसलमान? पूरा अरब जगत देखो, आज उनके विरुद्ध एक जगह एकत्र हो चुका है, ऐसा दिन आ रहा है कि मुसलमानों का नामो-निशान तक बाक़ी न रहेगा। ऐसी स्थिति में समझौता भंग करनेवालों पर आपत्ति करनेवाला ही कौन रह जाएगा? अतएव ऐसे उचित अवसर को किसी प्रकार छोड़ो नहीं। इस टिड्डी दल सेना का साथ दो, मुसलमानों को हमेशा के लिए नेस्तो-नाबूद किया जा सकता है। काब हुयई के जाल में फँस गया और उसकी मदद का वादा कर लिया। पैग़म्बर (सल्ल॰) को यह ख़बर पहुँची। तब आप (सल्ल॰) ने वास्तविकता जानने के लिए कुछ साथियों को वहाँ रवाना किया। उन्होंने जाकर अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) का समझौता काब को याद दिलाया, तब उसकी गर्वोक्ति थी—

कौन अल्लाह का पैग़म्बर! हम नहीं जानते। मुहम्मद में और हममें न कोई समझौता है और न मित्रता। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 231-233)

परेशानी कितनी बढ़ गई होगी, इसका इस बात से अन्दाज़ा लगाया जा

सकता है कि बाहरी दुश्मनों के मुक़ाबले में ये अन्दर के दुश्मन कितनी हानि पहुँचा सकते हैं। उनका निवास नगर के उत्तरी हिस्से में था, मुसलमानों के पिछले हिस्से में। अतः अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) और मुसलमान सदैव डरते थे कि न जाने कब उस ओर से आक्रमण हो जाए, कुछ नहीं तो वे औरतों और बच्चों को ही परेशान करने पर उतारू हो सकते हैं।

एक दिन यह आशंका सत्य सिद्ध हो गई।

औरतों को अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने सुरक्षा के लिए बनू-क़ुरैज़ा के निकट के एक क़िले में भेज दिया था। शत्रु सेनाओं ने मुसलमानों की शक्ति तथा एकाग्रता को समाप्त करने के लिए उन्होंने औरतों पर आक्रमण करने का निर्णय कर ही लिया। किस दिशा से आक्रमण होना चाहिए, इसकी टोह लेने के लिए उन्होंने एक जासूस रवाना किया। पैग़म्बर (सल्ल॰) की फूफी हज़रत सफ़ीया (रज़ि॰) भी औरतों में मौजूद थीं। उन्होंने जासूस को देखकर क़िले के रक्षक हज़रत हस्सान-बिन-साबित (रज़ि॰) (उस युग के प्रसिद्ध अरबी कवि) से कहा, "क्या देख रहे हो? जल्दी जाओ और उसका काम तमाम कर दो, वरना वह जाकर अपने साथियों को आक्रमण पर उभारेगा।"

हस्सान (रज़ि॰) किसी रोग के कारण लड़ने से विवश थे। उन्होंने अपनी विवशता प्रकट की तो हज़रत सफ़ीया (रज़ि॰) स्वयं जीवन या मृत्यु का दृढ़ निश्चय करके उसके मुक़ाबले के लिए तैयार हुईं और उसके सिर पर डंडे से एक प्रबल चोट लगाई और उसे मौत के घाट उतार दिया, फिर उन्होंने उसका सिर तन से जुदाकर उस ओर दीवार के बाहर फेंका, जहाँ यहूदी रहते थे। यहूदी कटे सिर को देखकर डर गए और यह सोचकर और भयभीत हुए कि औरतों की रक्षा के लिए मुस्लिम सेना मौजूद है और इस प्रकार यहूदियों ने अपने इस दुर्विचार को छोड़ दिया। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 229)

अल्लाह ने शत्रुओं के लिए बिलकुल प्रतिकूल स्थिति पैदा कर दी। उनमें अविश्वास तथा फूट बढ़ गई। एक महीने तक मदीना का घेराव करके शत्रु नाकाम वापस हुए।

इस विपत्ति से मुक्ति मिलनेवाले दिन ही पैग़म्बर (सल्ल॰) ने बनू-क़ुरैज़ा के ख़िलाफ़ क़दम उठा लिया और उनका क़िला घेर लिया। इस स्थिति में

काब-बिन-असद ने अपनी क़ौम से कहा, मित्रो! मैं तुम्हारे सामने तीन बातें रखता हूँ, जिसमें से एक तुम्हें स्वीकार करनी होगी–

"एक यह कि हम उसपर ईमान लाएँ। तुम्हें इतने दिनों में यह तो विश्वास हो ही गया है कि यह एक सच्चा पैग़म्बर है। हमारे ग्रन्थ में उसके आगमन की शुभ सूचना भी तो दी गई थी।" लेकिन बनू-क़ुरैज़ा ने इसे मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने निर्णायक ढंग में कहा कि हम तौरात छोड़कर किसी और ग्रन्थ को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। यह सुनकर काब ने यूँ कहा, "दूसरी बात यह है कि हम अपनी तलवार से अपने बाल-बच्चों का क़त्ल करेंगे और मुहम्मद से युद्ध करेंगे, अल्लाह हमारे और मुहम्मद के मध्य निर्णय कर देगा। हम यदि नष्ट भी हो गए, तो हमें अपने बेटे-पोतों के बारे में अफ़सोस न होगा। अर्थात् ज़िन्दा रहने की शक्ल में बाल-बच्चे फिर भी हो सकते हैं।"

यह सुनकर लोगों ने उत्तर दिया, "इन बेचारों की हत्या करके हम जीवित क्यों रहें।"

तब काब ने तीसरी बात सामने रखी।

"आज शनिवार की रात है। आज मुसलमान हमारे बारे में सन्तुष्ट होंगे। आइए! रात के अंधेरे में हम उनपर हमलावर होते हैं, शायद कि हमें सफलता मिल जाए।"

यह सुनकर उन्होंने कहा, "क्या हम अपने ही हाथों शनिवार के दिन की पावनता समाप्त करें, ऐसा कभी नहीं हो सकता।" काब ने ग़ुस्से में कहा, "तुम्हारे दिमाग़ ख़राब हो गए हैं, अब जो चाहो करो।"

(इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 246-247)

तात्पर्य यह कि यहूदियों ने मुसलमानों के घेराव के मुक़ाबले का निर्णय किया। एक महीने के घेराव के बाद उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल॰) को बताया कि साद-बिन-मुआज़ जो निर्णय करें, हम उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। साद (रज़ि॰) औस क़बीले के सरदार थे। औस और बनू-क़ुरैज़ा आपस में मित्र थे, अतएव निश्चित है कि वे हज़रत साद (रज़ि॰) से सहानुभूति की

आशा रखते थे। पैग़म्बर (सल्ल॰) ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया और घेरा वापस ले लिया। (हदीस : बुख़ारी)

बनू-क़ुरैज़ा का अपराध ऐसा न था कि उसे जल्द क्षमा कर दिया जाता।

इसके अतिरिक्त बनू-नज़ीर को देश निकाला देते ही पुराने समझौते का नवीनीकरण किया गया था, जिसमें विशेष स्पष्टीकरण था कि मदीना पर आक्रमण हो तो हम मुसलमानों के साथ मिलकर युद्ध क़रेंगे और जिस हद तक हो सकेगा, हर प्रकार की तैयारियाँ और सहायता करेंगे, पर सहायता तथा सहयोग तो दूर की बात है, उन्होंने छल-कपट, उद्दंडता तथा समझौते के ख़िलाफ़ हर सीमा को ख़न्दक़ की लड़ाई के मौक़े पर पार कर दिया था। उपरोक्त समझौते में शर्त रखी गई थी कि हर एक फ़रीक़ को अपने धर्म के अपनाने में स्वतन्त्रता दी जाएगी। इस समझौते के तहत जब कोई यहूदियों का मामला पैग़म्बर (सल्ल॰) तक पहुँचाया जाता, तो आप तौरात के अनुसार निर्णय करते थे।

हज़रत साद (रज़ि॰) ने सबसे पहले यहूदियों और पैग़म्बर (सल्ल॰) से वादा लिया कि मैं जो कुछ भी निर्णय करूँ, उसे दोनों फ़रीक़ों को मंजूर करना होगा और बाद में कहा, "तौरात की शिक्षाओं के अनुसार हर बालिग़ मर्द क़त्ल किया जाए, उनकी बीवियों और बच्चों को सामरिक अपराधी के रूप में क़ब्ज़े में कर लिया जाए और उनकी दौलत, लड़ाई में हासिल किए हुए ग़नीमत का माल जानकर सेना में बाँट दी जाए। यह है उनके अपराध का दंड।"

देखिए तौरात में क्या लिखा है—

"जब तू किसी नगर से युद्ध करने को उसके निकट जाए, तब पहले उससे संधि करने का समाचार दे। और यदि वह संधि करना स्वीकार करे और तेरे लिए अपने फाटक खोल दे, तब जितने उसमें हों वे सब तेरे अधीन होकर तेरे लिए बेगार करनेवाले ठहरें। परन्तु यदि वे तुझसे संधि न करें, परन्तु तुझसे लड़ना चाहें तो तू उस नगर को घेर लेना और जब तेरा परमेश्वर यहोवा उसे तेरे हाथ में सौंप दे तब उसमें के सब पुरुषों को तलवार से काट डालना परन्तु स्त्रियाँ और बाल-बच्चे और पशु आदि जितनी लूट उस नगर

में हो उसे अपने लिए रख लेना और तेरे शत्रुओं की लूट जो तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे दे उसे काम में लाना।" (बाइबल, व्यव॰ 20/10-14)

इस प्रकार क़त्ल किए गए व्यक्तियों की संख्या विभिन्न कथनों के अनुसार 400 से लेकर 700 तक थी, एक औरत भी इसमें शामिल है, जिसने एक मुसलमान के सिर पर पत्थर मारकर उसे शहीद किया था। इसके बदले में उस औरत को क़त्ल कर दिया गया। हुयई-बिन-अख़तब उस समय तक बनू-क़ुरैज़ा के साथ था, अतएव वह भी क़त्ल किया गया।

उपरोक्त सख़्त सज़ा को दो महत्वपूर्ण कारणों के आधार पर निन्दनीय नहीं कहा जा सकता है। एक कारण तो यह है कि यहूदियों की पवित्र किताब तौरात का भी यही निर्णय था। दूसरे उन्होंने स्वयं जिसको पंच चुना था, उसी का निर्णय था। इसी कारण यहूदियों ने इस निर्णय के विरुद्ध कोई स्वर नहीं उठाया। एस॰ लाइन पॉल इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखता है, उसे यहाँ पेश करना उपयुक्त होगा, वह कहता है—

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह निर्णय बहुत सख़्त तथा ख़ून ख़राबा करनेवाला था। राजनीतिक पार्टी के विरुद्ध चर्च की भेजी हुई फ़ौज के कामों से या आगस्टीन के समय में की गई कार्रवाई से इसमें बड़ी समानता है।"

पर एक बात यहाँ उल्लेखनीय है कि यहूदियों के अपराध की सज़ा मुख्य रूप से सामरिक स्थिति में राज्य के विरुद्ध किए गए देश-द्रोह के अपराध का दंड था। जिस व्यक्ति ने लार्ड विलिंगटन की यात्रा-कथा में डाकुओं को पेड़ों पर फ़ाँसी दिए जाने के वर्णन को पढ़ा है उन्हें इन देश-द्रोही यहूदियों को तलवार की नोक से क़त्ल किए जाने पर आश्चर्य न होगा।

(सलेक्शंज़ फ़्राम दी क़ुरआन, लेनपूल, पृ॰ 65)

लेकिन इससे यह न समझा जाए कि मदीना में इसके बाद एक भी यहूदी बाक़ी न रहा। वे मौजूद थे और इसकी गवाहियाँ भी मौजूद हैं। मिसाल के तौर पर बनू-क़ैनुक़ाअ को सन् 2 हि॰ में देश निकाला दिया गया था, लेकिन 3 हि॰ में उहुद की लड़ाई के अवसर पर हम देखते हैं कि वे क़ुरैश के विरुद्ध पैग़म्बर (सल्ल॰) की मदद का वादा करते हैं। (इब्ने-साद, भाग-2 पृ॰ 33,34)

हम देख सकते हैं कि ख़ैबर की लड़ाई में बनू-क़ैनुक़ाअ ने पैग़म्बर

(सल्ल॰) से मिलकर लड़ाई लड़ी और लड़ाई के बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उनको मुआवज़ा भी दिया। (हदीस : बैहक़ी भाग-9, पृ॰ 53)

बनू-क़ैनुक़ाअ का एक व्यक्ति रिफ़ाआ-बिन-सईद बनू-मुस्तलिक़ की लड़ाई के बाद मदीना में मरा। (हदीस : मुस्लिम)

यह बात तो अत्यधिक प्रसिद्ध है कि पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मृत्यु के समय अपना कवच एक यहूदी के पास रेहन रखा था। (हदीस : बुख़ारी)

इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहूदी फिर भी मदीना में रहते थे, बल्कि उन्हें स्वतन्त्र होकर व्यापार और लेन-देन की पूरी अनुमति थी।

उपरोक्त घटनाओं से हम इस नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि तमाम यहूदियों को निर्वासित नहीं किया गया था, बल्कि उनमें से जिसका देश-द्रोह सिद्ध हो गया उसे दंड दिया गया था।

ख़ैबर

यद्यपि यहूदियों की दुष्टता से मदीना मुक्त हो गया था, लेकिन मदीना से सौ कोस दूर ख़ैबर नामक स्थान पर ये लोग एकत्र हो गए थे, अब जबकि उन्होंने फिर मुसलमानों के विरुद्ध ख़ुफ़िया सरगर्मियाँ शुरू कर दी थीं, मुसलमान किस प्रकार शान्तिपूर्ण जीवन बिता सकते थे! ख़न्दक़ की लड़ाई से ही यह सिद्ध हो गया था कि ये लोग इस्लामी राज्य के लिए सदैव शत्रु बने रहेंगे और मदीना की सुरक्षा किए बिना तमाम सेनाओं के साथ ख़ैबर रवाना होना भी सम्भव न था, इसलिए कि मदीना में सेना के न होने की सूचना से हो सकता था कि क़ुरैश या उनका मित्र क़बीला मदीना पर हमलावर हो। अतएव पैग़म्बर (सल्ल॰) ने निर्णय लिया कि दोनों समस्याओं से निबटना चाहिए। हुदैबिया का समझौता इसी दूरदर्शिता का परिणाम था। सन् 3 हि॰ में पैग़म्बर (सल्ल॰) ने सामयिक ढंग का एक समझौता किया। इससे कम-से-कम दस वर्ष तक के लिए क़ुरैश के आक्रमण से रक्षा हो गई। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 331-332, हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यह पैग़म्बर (सल्ल॰) की राजनीतिक सूझ-बूझ, सामरिक निपुणता तथा

अथाह साहस की सफलता थी। क़ुरआन ने इसे 'स्पष्ट विजय' कहा है।

इस ओर से सन्तुष्ट हो जाने के बाद पैग़म्बर (सल्ल०) ने ख़ैबर का रुख़ किया। वहाँ यहूदी अपने पैतृक मित्र क़बीलों से और क़बीले ग़तफ़ान से मिल गए थे और अस्त्रों से लैस होकर मदीना पर हमलावर होने का इरादा कर रहे थे। पैग़म्बर (सल्ल०) ने सबसे पहले ख़ैबर और ग़िफ़ार के बीच रजीअ में इस्लामी सेना को जमा किया ताकि ग़िफ़ार से ख़ैबरवालों को मदद न मिल सके। अतएव जब ग़िफ़ारवाले यहूदियों की सहायता के लिए निकले, तो उन्होंने देखा कि इस्लामी सेना उनके आँगन में पड़ाव डाले है और इस प्रकार वे वापस लौटने पर विवश हुए। (तबरी, भाग-3, पृ० 1575)

ख़ैबर पर आक्रमण लगभग एक महीने में पूर्ण किया। ख़ैबर के बड़े-बड़े सरदार और उच्च पदस्थ व्यक्ति युद्ध-स्थल ही में मारे गए। शेष यहूदियों को पहले की तरह ख़ैबर में रहने की अनुमति दी, ज़मीन पट्टे पर उन्हीं के हवाले की और फ़सल तैयार होने के समय किसी को भी ख़ैबर रवाना करते, जो निश्चित भाग लेकर मर्कज़ी बैतुल-माल में जमा करता था। इसी युद्ध के बाद हुयई-बिन-अख़तब की बेटी उम्मुल-मोमिनीन सफ़ीया (रज़ि०) पैग़म्बर (सल्ल०) के हरम में दाख़िल हुईं।

ख़ैबर में एक यहूदी औरत ने आप (सल्ल०) को विष देने का यत्न किया। यह बनू-नज़ीर क़बीले के सरदार सल्लाम-बिन-मिश्कम की बीवी ज़ैनब थी। पैग़म्बर (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) के लिए एक बकरी ज़िबूह की। बकरी का कौन-सा भाग आप (सल्ल०) ज़्यादा पसन्द करते हैं, उसने पहले ही मालूम कर लिया था। जब उसे मालूम हुआ कि पाए पैग़म्बर (सल्ल०) को अधिक पसन्द हैं तो उसपर मुख्य रूप से विष लगाया। पैग़म्बर (सल्ल०) की सेवा में यह हिस्सा लाया गया। आप (सल्ल०) ने पाए का एक भाग तोड़ लिया, मुँह में डालकर चबाया और यह कहकर थूक दिया कि इसमें विष है। औरत को बुलाकर पूछा गया तो उसने अपराध स्वीकार करते हुए कहा, "अपनी क़ौम को आपके बारे में बहुत-सी बातें कहते मैंने सुना है। अगर आप बादशाह हैं तो आपसे हमें नजात मिले और अगर आप पैग़म्बर हैं तो अल्लाह की तरफ़ से आपको वह्य मिलेगी कि इसमें विष है, इसी लिए मैंने यह काम

किया।"

यह सुनकर पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उसे माफ़ कर दिया, लेकिन दो-तीन दिन बाद एक सहाबी का इस बकरी का मांस खा जाने के कारण देहान्त हो गया तो ज़ैनब को बदले में क़त्ल कर दिया गया। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 652-653)

पैग़म्बर (सल्ल॰) यहूदियों से किस तरह पेश आए, इसका एक चित्र ऊपर प्रस्तुत किया गया। इन्हें आप (सल्ल॰) ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। मौलिक, राजनीतिक आधार दिए। किसी प्रकार का जिज़या या टैक्स उनपर लगाया नहीं, इसके बावजूद वे बार-बार वचन भंग करते रहे, अन्ततः उन्हें नसीहत दी कि सामान लेकर जहाँ चाहो, चले जाओ, वह भी उन व्यक्तियों को, जिनका अपराध स्पष्ट हो चुका हो, एक आदमी की ग़लती में इसके अतिरिक्त किसी और को दंड नहीं दिया जाता। बनू-नज़ीर और बनू-क़ैनुक़ाअ के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की, तो इसका कारण यही था कि वे मदीना छोड़कर जा रहे थे, तो बिलकुल शान्ति के साथ।

उपरोक्त दोनों क़बीलों से पैग़म्बर (सल्ल॰) अति सहानुभूति से पेश आए, वरना वे तो कठोर दंड के अधिकारी थे। बनू-क़ुरैज़ा ने घोर उद्दंडता का परिचय दिया, तब भी यदि वे दया-मूर्ति पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के सामने अपनी समस्या रखते, तो उसका निर्णय न्यायसंगत ही होता। लेकिन उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल॰) से अधिक अपने साथी पर विश्वास किया, जबकि उस मित्र ने भी उन्हीं के क़ानून के अनुसार उनके विरुद्ध निर्णय सुना दिया।

मुनाफ़िक़

मुनाफ़िक़ अरबी मूल का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है एक ओर से प्रवेश करके दूसरी ओर को निकल जाना। इसी लिए अरबी में सुरंग को 'नफ़क़' कहा जाता है। क्योंकि इसमें मनुष्य एक ओर से प्रविष्ट होकर दूसरी ओर निकल जाता है। मुनाफ़िक़ का ईमान सामयिक होता है। वह मोमिनों के मध्य अपने मोमिन होने की घोषणा करेगा, लेकिन वहाँ से अपने दोस्तों में चला जाए तो कुफ़्र प्रकट करेगा। अतः ईमान उसमें स्थाई रूप से रहता नहीं है। अन्दर प्रविष्ट होते ही निकल जाता है। इसी लिए उसे मुनाफ़िक़

कहा गया है।

निफ़ाक़ एक बीमारी है। क़ुरआन में जहाँ मुनाफ़िक़ों का वर्णन हुआ है, वहाँ कहा गया है—

"उनके दिलों में बीमारी है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-10)

निफ़ाक़ के दो कारण होते हैं। एक सन्देह, दूसरा कायरता। कुछ टीकाकारों ने उक्त स्थानों पर शब्द 'मर्ज़' का अनुवाद 'कायरता' ही किया है। मुनाफ़िक़ का सन्देह उसके सिद्धान्त में तथा कायरता सिद्धान्त को व्यवहार रूप देने में होती है। वह इस प्रकार सोचता है कि कहीं ऐसा न हो कि उसके विचार ठीक न हों। कहीं विचारों को प्रकट करने से लज्जित तो न होना पड़े। आन्दोलन सफल हुआ तो कहीं उसके लाभों से वंचित न कर दिया जाऊँ।

इस्लाम जब तक मक्का में था, उसमें निफ़ाक़ की गुंजाइश न थी। इसलिए कि उस समय इस्लाम स्वीकार करना और इस्लाम स्वीकार करने की घोषणा करना तलवार की नोक पर क़दम रखने से किसी तरह कम ख़तरनाक न था। इसलिए वहाँ सन्देह या भय की गुंजाइश न थी। यहूदियों की तरह मुनाफ़िक़ों से भी मदीना में वास्ता पड़ा।

अब्दुल्लाह-बिन-उबई

मदीना के दो परिवार औस और ख़ज़रज ने आपस की लम्बी जंगों से तंग आकर निर्णय किया कि अब दोनों एक सरदार को चुन करके उसके नेतृत्व में एक साथ रहेंगे। उन्होंने एक होकर फ़ैसला किया कि भविष्य में तमाम मामलों में इस व्यक्ति के नेतृत्व में चलेंगे और तमाम मतभेद में इसकी आज्ञा का पालन किया जाएगा। इस सरदारी के पद के लिए उन्होंने औस क़बीले के एक सरदार अब्दुल्लाह-बिन-उबई-बिन-सलूल को चुन लिया। उसके पद पर आसीन होने की तैयारियाँ की जा रही थीं।

इस बीच पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) मक्का से हिजरत करके मदीना पहुँचे और दोनों क़बीलों के सरदारों ने पैग़म्बर (सल्ल॰) के सामने सिर झुका दिए।

इस प्रकार अब्दुल्लाह-बिन-उबई की ताजपोशी की कामना उसके मन ही में दबकर रह गई। अब्दुल्लाह-बिन-उबई की अन्तिम समय तक यह कामना उससे जुदा न हुई कि अगर मुहम्मद (सल्ल॰) न आते तो आज मैं क़ौम का बादशाह कहलाता। उसकी दृष्टि में पैग़म्बर (सल्ल॰) उसका पद लेनेवाले व्यक्ति की हैसियत रखते थे।

शुरू में उसने इस्लाम स्वीकार न किया, पैग़म्बर (सल्ल॰) के भविष्य के बारे में वह जानना चाहता था। उदाहरण के लिए एक घटना का वर्णन ही पर्याप्त होगा—

एक बार पैग़म्बर (सल्ल॰) क़बीले औस के सरदार साद-बिन-उबादा (रज़ि॰) की बीमारपुर्सी के लिए जा रहे थे। रास्ते में अब्दुल्लाह-बिन-उबई अपने साथियों के साथ बैठा हुआ था। कुछ कहे बिना आगे बढ़ जाने को उचित न समझते हुए पैग़म्बर (सल्ल॰) अपनी सवारी से उतर आए और सलाम करके उसके पास जाकर बैठे। अपनी आदत के अनुसार आप (सल्ल॰) ने कुछ आयतें पढ़कर सुनाईं और उसे कुछ नसीहतें कीं। अब्दुल्लाह यह सब चुपचाप सुनता रहा पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अपनी बात समाप्त की तो उसने यह कहा कि आप जो कह रहे हैं यदि सही है तो इससे बढ़कर कोई अच्छी बात नहीं, पर कृपा करके आप अपने मकान में तशरीफ़ रखें। अगर कोई आपके पास आए तो उपदेश दीजिए और अगर कोई आपके पास नहीं आता तो उसे परेशान नहीं करना चाहिए। जो सुनना नहीं चाहते उनके पास जाकर सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं।

यह सुनकर पैग़म्बर (सल्ल॰) वहाँ से चल दिए, जब साद-बिन-उबादा (रज़ि॰) के पास पहुँचे तो उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल॰) के चेहरे पर नागवारी के चिह्न देखकर स्थिति जानना चाही तो पैग़म्बर (सल्ल॰) ने पूरी घटना सुनाई। साद (रज़ि॰) ने कहा, ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! आप अब्दुल्लाह की बातों पर ध्यान न दें। अल्लाह की क़सम! हम उसे आपके आने से पहले अपना बादशाह बनाने ही वाले थे। वह समझता है कि ताज और तख़्त आपने छीन लिया। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 234-238)

बाद में जब अल्लाह ने मुसलमानों को खुली हुई विजय दी तो

अब्दुल्लाह-बिन-उबई और उसके साथियों ने समझ लिया कि अब और प्रतीक्षा करने से हो सकता है कि अधिक हानि हो, इसलिए उन्होंने विवश होकर बैअत कर ली। यह बैअत ईमान के कारण नहीं थी बल्कि अवसरवादिता थी। वह जब तक जीवित रहा, यथा सम्भव पैग़म्बर (सल्ल॰) का उसने विरोध ही किया। पैग़म्बर (सल्ल॰) की राह में कठिनाइयाँ पैदा करने से वह कभी पीछे न हटा।

मुनाफ़िक़ों की ख़ुफ़िया सरगर्मियाँ

बद्र का युद्ध हिजरत के दूसरे वर्ष हुआ। इसके बाद के वर्ष में उहुद का युद्ध हुआ। चूँकि क़ुरैश बद्र के युद्ध में अपनी पराजय के अपमान को समाप्त करने, अपने क़त्ल हुए व्यक्तियों का बदला लेने का निश्चय कर चुके थे, इसलिए उन्होंने युद्ध में अपनी पूरी शक्ति झोंक दी। पैग़म्बर (सल्ल॰) का इरादा था कि मदीना के अन्दर रहकर मुक़ाबला किया जाए।

अब्दुल्लाह-बिन-उबई का भी यही ख़याल था, लेकिन जोशीले नौजवानों ने इस ख़याल को रद्द कर दिया। उन्होंने आग्रह किया कि औरतों की तरह घर में बैठकर युद्ध करना उचित नहीं, बल्कि शहर से बाहर निकलकर मुक़ाबला होना चाहिए। अन्ततः उनके सुझाव से पैग़म्बर (सल्ल॰) भी सहमत हो गए और शहर से बाहर जाकर मुक़ाबला करने का फ़ैसला किया। एक हज़ार आदमियों के साथ पैग़म्बर (सल्ल॰) रवाना हुए। क़ुरैश की सेना में सैनिकों की संख्या तीन हज़ार थी। जब पैग़म्बर (सल्ल॰) ने आधा रास्ता तय कर लिया और शौत नामक स्थान पर पहुँचे तो अब्दुल्लाह-बिन-उबई अपने तीन सौ साथियों के साथ, यह कहकर कि पैग़म्बर (सल्ल॰) ने हमारी राय नहीं मानी और जान-बूझकर मौत की ओर जाना हम नहीं चाहते, मदीना वापस हो गया। कुछ लोगों ने उससे कहा कि इस प्रकार की आपातस्थिति में अपनी क़ौम और अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की शक्ति कमज़ोर न करो, शत्रु हमारे सामने है, स्थिति की जटिलता को महसूस करो, अतः वापस न जाओ। लेकिन परिणाम कुछ न निकला। वह अपनी हटधर्मी पर अड़ा रहा। इस तरह विपत्ति के समय में उसने मुसलमानों को धोखा दिया। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 68)

उहुद में मुसलमानों को बहुत क्षति पहुँची। सहाबा (रज़ि॰) में से कुछ विशेष व्यक्ति भी शहीद हुए, बल्कि पैग़म्बर (सल्ल॰) भी बुरी तरह घायल हुए। पैग़म्बर (सल्ल॰) जब जुमे का ख़ुत्बा देकर बैठ जाते तो अब्दुल्लाह-बिन-उबई लोगों से यह कहा करता था कि लोगो! ये अल्लाह के पैग़म्बर हैं। इनके कारण अल्लाह ने हमें इज़्ज़त दी है। इनकी हर तरह से मदद करके मज़बूत करना हमारी ज़िम्मेदारी है। यही उसकी लम्बे समय तक आदत रही। उहुद की लड़ाई के बाद भी जब अब्दुल्लाह-बिन-उबई ये शब्द कहने के लिए उठा तो किसी ने उसका हाथ खींचकर उसे बिठाते हुए कहा कि ऐ अल्लाह के दुश्मन! क्या तुझे शर्म नहीं आती, तू कौन-सी ज़बान से हमें उपदेश देने जा रहा है? किस तरह धोखा तूने दिया, क्या तुझे यह मालूम नहीं? यह सुनकर क्रुद्ध अब्दुल्लाह-बिन-उबई मस्जिद से बाहर निकल आया। दरवाज़े के पास किसी ने उससे प्रश्न किया कि कहाँ जा रहे हो? तो उसने उत्तर यह दिया कि मैं उस व्यक्ति के पक्ष में बोलने के लिए उठा था लेकिन उसके साथियों ने मेरा अपमान किया, मानो मैंने कोई अपराध किया हो। दूसरे व्यक्ति ने कहा कि आइए! पैग़म्बर (सल्ल॰) के पास चलते हैं, वे आपकी माफ़ी के लिए दुआ करेंगे। तो उसने उत्तर दिया कि मैं नहीं आता और न मुझे उस व्यक्ति की दुआ की आवश्यकता है। (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 111)

उहुद की लड़ाई के बाद बनू-नज़ीर कांड के समय इसी अब्दुल्लाह-बिन-उबई और मालिक-बिन-नोफ़ल और उनके साथियों ने उन्हें सूचना दी थी कि बिलकुल न घबराओ, हम तुम्हारी हर प्रकार से मदद करेंगे। इसका उल्लेख पहले हो चुका है। इसी प्रकार की चेष्टाओं का परिणाम था कि वह घटना इतनी लम्बी हो गई और बनू-नज़ीर ने हथियार डालने से इनकार कर दिया।

हिजरत के पाँचवें वर्ष ख़न्दक़ की लड़ाई हुई। दूसरों की तरह पैग़म्बर (सल्ल॰) भी ख़न्दक़ खोदने और मिट्टी निकालने में भी भाग ले रहे थे। इस अवसर पर भी मुनाफ़िक़ वापस हो गए थे। भारी सर्दी का मौसम था, भूख और प्यास की अधिकता के होते हुए भी काम करना पड़ रहा था। मुसलमान सब्र और धैर्य के साथ रात-दिन काम करते रहे। उक्त कार्य में हिस्सा लेने

से रोकनेवाला कोई काम आ पड़ता तो पैग़म्बर (सल्ल॰) से अनुमति लेकर चले जाते, लेकिन मुनाफ़िक़ों का अन्दाज़ बिलकुल भिन्न था। वे काम में बहुत सुस्त थे, वे दूसरों की आँख बचाकर काम छोड़कर भाग जाते थे और काम का नुक़्सान करते थे।

युद्ध या दूसरी विपत्तियों के समय व्यक्तियों में एकता तथा साहस एवं शक्ति की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में जनता में भय और निराशा फैलानेवाली बातें करना बहुत ही हानिकारक होता है। युद्ध चाहे कितना ही लम्बा हो जाए, लेकिन जब तक इनसान में लगाव और साहस है, वह युद्ध-क्षेत्र में पीछे न हटेंगे और स्थिति पर क़ाबू पाकर विजय पाना सम्भव हो सकेगा। इसलिए युद्ध की स्थिति में भय और निराशा की बातें फैलानेवालों को देश-द्रोही का दंड मिलता है।

मुनाफ़िक़ ऐसे समय पर भी मुसलमानों को हर प्रकार की हानि पहुँचाने की चेष्टा करते थे, जबकि युद्ध जारी हो। इब्ने-हिशाम के शब्दों में–

ऐसे समय पर मुनाफ़िक़ मज़ाक़ करते हुए कहते हैं कि "हमसे वादा किया गया था कि किसरा व क़ैसर के ख़ज़ाने हमें मिलेंगे और उधर यह स्थिति है कि कोई लेट्रीन जाए तो इसका विश्वास नहीं कि वह वापस भी आएगा।"

बल्कि जब शत्रु का घेराव अधिक ज़ोर पकड़ गया तो मुनाफ़िक़ों में से एक-एक आकर कहने लगे कि हमारे घर असुरक्षित हैं। शत्रु उसमें प्रविष्ट हो जाएँगे। हमें घरों की सुरक्षा के लिए जाने की अनुमति दीजिए, जैसा कि क़ुरआन ने कहा कि 'यह वास्तव में युद्ध से भागने का बहाना था। (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-13) उसका उद्देश्य केवल इतना ही नहीं था कि मुसलमानों की शक्ति कम हो, बल्कि अस्ल उद्देश्य यह था कि जनता में भय और निराशा फैल जाए और इन तमाम बातों के बावजूद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उन्हें वापस जाने की अनुमति दे दी। बल्कि जब अल्लाह ने उक्त विपत्ति से मुसलमानों को छुटकारा दिलाया, शत्रु स्वयं ही घेराव उठाकर चला गया। इसके पश्चात् भी पैग़म्बर (सल्ल॰) ने मुनाफ़िक़ों से कोई पूछताछ नहीं की।

हिजरत के छठे वर्ष बनू-मुस्तलिक़ के विरुद्ध कार्रवाई की गई[1]। इस युद्ध में पैग़म्बर (सल्ल०) भी सम्मिलित थे। इस्लामी सेना मुरैसीअ झील के निकट पड़ाव डाले हुए थी। एक दिन एक अनसारी और मुहाजिर में झगड़ा हुआ। अब्दुल्लाह-बिन-उबई यह देखकर क्रुद्ध हुआ और कहा कि इन मुहाजिरों ने हमारी नाक में दम कर दिया है। मदीना पहुँचकर इन ज़लीलों को वहाँ से बाहर कर देंगे और अपने मित्रों से यह कहा कि इस विपत्ति को तुमने आमन्त्रित किया था। तुम्हीं ने उन्हें अपने घरों में जगह दी। अपने धन-सम्पत्ति में भागीदार बनाया। यदि तुम ऐसा न करते तो वे इस सीमा को न पहुँचते।

पैग़म्बर (सल्ल०) को सूचना मिली कि अब्दुल्लाह-बिन-उबई कह रहा है कि जब हम मदीना लौट आएँगे तो वहाँ से ज़लीलों को बाहर कर देंगे और यह कि ज़लीलों से तात्पर्य मुसलमान हैं।

ऐसा सुनकर अब्दुल्लाह को क़त्ल करने का हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) ने पैग़म्बर (सल्ल०) से निवेदन किया। इसका पैग़म्बर (सल्ल०) ने इस प्रकार उत्तर दिया कि उमर तुम यह चाहते हो कि लोग कहें कि मुहम्मद अपने ही आदमियों को क़त्ल करा रहा है? नहीं, ऐसा कदापि न होगा।

जब अब्दुल्लाह-बिन-उबई को मालूम हुआ कि उक्त मामले की पैग़म्बर (सल्ल०) को ख़बर लग गई है तो वह स्वयं पैग़म्बर (सल्ल०) के पास आया। पैग़म्बर (सल्ल०) ने पूछा कि उसके मूल शब्द क्या थे? उसने क़सम खाकर कहा कि इस प्रकार के कोई वाक्य उसने नहीं कहे हैं। पैग़म्बर (सल्ल०) ने उसकी बात मान ली और मामले को रफ़ा-दफ़ा किया। इसी कारण क़ुरआन ने स्पष्टीकरण किया कि अब्दुल्लाह ने झूठ कहा है और उसने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। हदीस भी मुनाफ़िक़ की पहचान यही बताती है—

"वह (मुनाफ़िक़) बात करता है तो झूठ बोलता है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

जब यह बात बहुचर्चित हो गई तो अब्दुल्लाह-बिन-उबई के लड़के ने

1. ख़ुज़ाआ क़बीले की एक शाखा बनू-मुस्तलिक़ मदीना पर हमला करने की तैयारी कर रही थी। इसकी सूचना मिलने पर पैग़म्बर (सल्ल०) ने उनके विरुद्ध यह कार्रवाई की।

(जिसका नाम भी अब्दुल्लाह था) पैग़म्बर (सल्ल॰) के पास जाकर निवेदन किया कि "मैंने सुना है कि आप मेरे पिता की हत्या की अनुमति देनेवाले हैं। मुझे डर है कि यदि कोई और इस काम को करता है तो मैं अपने क्रोध पर क़ाबू न पा सकूँगा, इसलिए मेरा निवेदन है कि क़त्ल करने की आज्ञा मुझे दें मैं स्वयं अपने पिता का सिर आपकी सेवा में प्रस्तुत करूँगा।" पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उन्हें तसल्ली दी और कहा कि "जब तक तुम्हारे पिता हमारे साथ रहेंगे हम उनसे उदारता का व्यवहार करेंगे।" (इब्ने-हिशाम, भाग-3, पृ॰ 305)

बनू-मुस्तलिक़ की इस लड़ाई से वापसी के समय वह घटना सामने आई जो पैग़म्बर (सल्ल॰) की बीवी हज़रत आइशा (रज़ि॰) पर आरोप लगाने का कारण बनी। इस झूठी, दुखद तथा खेदजनक घटना के पीछे भी इन्हीं मुनाफ़िक़ों का हाथ था। कुछ सीधे-सादे मुसलमान भी इन मुनाफ़िक़ों के जाल में फँसकर इस सिलसिले में कुछ अनुचित कार्य कर बैठे थे, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इस कांड में मुनाफ़िक़ों का ही हाथ था। इसके बावजूद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उन्हें क्षमा कर दिया। (हदीस : बुख़ारी)

सन् 9 हि॰ में मक्का पर विजय प्राप्त करने के बाद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने रोम के विरुद्ध युद्ध के लिए रवाना होने की घोषणा की। यह है तबूक का युद्ध। ये कड़ी परीक्षा के दिन थे। देश में अकाल पड़ा हुआ था। तीव्र गर्मी के साथ-साथ रास्ता भी लम्बा था। पैग़म्बर (सल्ल॰) हर बार युद्ध को रवाना होते समय लक्ष्य को गुप्त रखते थे, लेकिन दूरी का ख़याल करते हुए और तैयारी की दृष्टि से आप (सल्ल॰) ने सेना के कूच करने का लक्ष्य भी स्पष्ट कर दिया था। इस युद्ध में भी मुनाफ़िक़ रोड़े अटका रहे थे।

आरम्भ में वे लोगों में भय और सन्देह पैदा करने लगे। वे अफ़वाहें फैलाते रहे कि "इस गर्मी में इतना लम्बा सफ़र कैसे हो सकेगा? पहले ही से भुखमरी चल रही है ऐसे में सफ़र की तैयारी क्या ख़ाक करेंगे। आख़िर में इतना दूर जाने का उद्‌देश्य क्या है?"

साधारणतः वे 'सुवैलम' नामक यहूदी के घर में इकट्ठा होते थे और लोगों को गुमराह करने की योजना बनाते थे। उनके बारे में सूचनाएँ पैग़म्बर

(सल्ल०) तत्काल ही प्राप्त कर लेते थे। यद्यपि आप (सल्ल०) ने उनके साथ उदारता से काम लिया, लेकिन उनकी शरण-स्थली सुवैलम के मकान को आग लगाने का आदेश दे दिया।

इसके बाद वे पैग़म्बर (सल्ल०) के पास आए और क़सम खाकर अपनी विवशता व्यक्त करने लगे और पैग़म्बर (सल्ल०) ने वतन में रहने की अनुमति स्वेच्छा से दे दी। जब सेना रवाना हुई तो अब्दुल्लाह-बिन-उबई और उसके साथी भी साथ हो लिए और पहली मंज़िल सनीयतुल-वदाअ से ही वापस हो गए। मित्र और परिवारवाले अपने रिश्तेदारों और साथियों को विदा करते समय सनीयतुल-वदाअ तक जाया करते थे। मुनाफ़िक़ों ने अपना पड़ाव मुसलमानों के पड़ाव से दूर डाल लिया। शायद उनका उद्देश्य एकता की कमी देखकर मुस्लिम सेना में भय और निराशा फैलाना था, लेकिन मुसलमानों पर उनकी चालों का कोई प्रभाव न हो रहा था। दूसरे दिन जब सफ़र शुरू हुआ तो वे धीरे से मदीना वापस हुए। पैग़म्बर (सल्ल०) ने तबूक से लौटकर भी उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की।

अब्दुल्लाह-बिन-उबई का देहान्त

उक्त घटना के पश्चात् अधिक समय नहीं बीता था कि अब्दुल्लाह-बिन-उबई का देहान्त हो गया। उसका बेटा अति निष्ठावान तथा अल्लाह और उसके पैग़म्बर पर अपनी जान तक निछावर कर देनेवाला मुसलमान था। जब पिता का देहान्त हुआ तो उसने पैग़म्बर (सल्ल०) के पास आकर निवेदन किया कि पिता को कफ़नाने के लिए पैग़म्बर (सल्ल०) अपना जुब्बा दे दें। पैग़म्बर (सल्ल०) ने सहर्ष उनका निवेदन स्वीकार कर लिया और अपनी कमीज़ उतारकर दे दी। फिर अब्दुल्लाह (रज़ि०) आकर कहने लगे कि पिता के जनाज़े की नमाज़ भी हज़रत (सल्ल०) ही पढ़ाएँगे। इसके लिए भी पैग़म्बर (सल्ल०) तैयार हो गए। उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०) को मालूम हुआ तो उन्होंने पैग़म्बर (सल्ल०) को रोकने के लिए यह कहा कि आपने इस मुनाफ़िक़ के कफ़नाने-दफ़नाने का निश्चय कर लिया है? क्या आपको याद नहीं कि उसने कैसे-कैसे मौक़े पर क्या-क्या कहा और किया? उसने हमें भी कैसा नुक़सान पहुँचाया? पैग़म्बर (सल्ल०) ने मुस्कुराकर उत्तर दिया कि "मैंने

एक फ़ैसला कर लिया है इसलिए अल्लाह ने मुझे हक़ दिया है।"

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अगर अल्लाह ने सत्तर से अधिक बार दुआ करने पर उसको क्षमा कर दिया तो मैं उसके लिए क्यों न तैयार हूँ और पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उसकी जनाज़े की नमाज़ अदा की।

(इब्ने-हिशाम, भाग-4, पृ॰ 147)

इस घटना के साथ ही क़ुरआन ने आदेश दिया कि पैग़म्बर (सल्ल॰) किसी मुनाफ़िक़ के जनाज़े की नमाज़ नहीं अदा करेंगे। मुनाफ़िक़ और क्रुद्ध हुए लेकिन अब्दुल्लाह-बिन-उबई की मृत्यु से उनकी रीढ़ की हड्डी टूट गई। अब्दुल्लाह-बिन-उबई व्यक्तिगत शत्रुता के कारण मुनाफ़िक़ों का सरदार था और जब तक जीवित रहा हर प्रकार की गुप्त गतिविधियों में ही व्यस्त रहा। दूसरे मुनाफ़िक़ों के लिए भी वह 'केन्द्र की हैसियत रखता था। अतः उनका संगठन छिन्न-भिन्न हो गया।

मुनाफ़िक़ आस्तीन के साँप थे, इसलिए कि प्रत्यक्ष में वे मुसलमान थे। मुसलमानों के साथ मिलकर नमाज़ अदा करने में तथा अनेकों मशवरों में सम्मिलित रहते थे, अतः रहस्यों से परिचित रहते थे और इसके साथ ही जब भी अवसर मिलता तो अपने विषैले दाँतों से मुसलमानों को डसने में भी कोई संकोच न होता था। पैग़म्बर (सल्ल॰) उनके सिलसिले में तमाम जानकारी रखते थे, लेकिन आप (सल्ल॰) ने उनसे क्षमा याचना का ही मामला किया।

इतने बयान ही से स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम के पैग़म्बर अपने शत्रुओं से कैसा मामला करत थे? पैग़म्बर (सल्ल॰) के अन्दर और बाहर शत्रु थे। मक्का के मुशरिक और मदीना के यहूदी पैग़म्बर (सल्ल॰) की उम्मत से बाहर थे, लेकिन ये मुनाफ़िक़ आप (सल्ल॰) के अन्दर के शत्रु थे, फिर भी पैग़म्बर (सल्ल॰) ने प्रत्येक के प्रति सहानुभूति तथा क्षमा याचना का ही मामला किया।

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने उस समय तक उदारता दिखाई, जब तक कि किसी ने क्षमा का द्वार अपने ऊपर स्वयं ही न बन्द कर लिया हो। क्या दुनिया के किसी बादशाह या सुधारक से ऐसा उदाहरण मिल सकता है?